ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 17 अगस्त 2025

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार, 17 अगस्त 2025 से 23 अगस्त 2025

भाद्रपद कृ. 09 • वि० सं०-2081 • वर्ष 66, अंक 33, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 201 • सृष्टि-संवत् 1,97,29,49,125 • पृ.सं. 1-12 • मूल्य - 5/- रू. • वार्षिक शु. 300/- रू.

डी.ए.वी. चन्द्रशेखरपुर, ओडिशा ने मनाया 37वाँ स्थापना दिवस

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, चन्द्रशेखरपर, ओडिशा में विद्यालय का 37वाँ स्थापना दिवस श्रद्धा और उल्लास पूर्वक मनाया गया। समारोह का शुभारम्भ यज्ञ से किया गया। विद्यालय प्रबन्धन के अध्यक्ष श्री सन्तोष कुमार सत्पथी, क्षेत्रीय अधिकारी डॉ. केशव चन्द्र सत्पथी, सपत्नीक, यज्ञ पर मुख्य यजमान के रूप में उपस्थित हुए। प्राचार्या डॉ. सुजाता साहु, अध्यापक–वृन्द एवं छात्र–छात्राओं ने श्रद्धापूर्वक आहुतियाँ प्रदान कीं।

समारोह को यादगारी बनाने के लिए विद्यालय की ओर से सप्ताह भर अनाथ आश्रमों तथा वृद्ध आश्रमों में जाकर अनेक कार्यक्रम आयोजित किए गए। रक्तदान शिविर के माध्यम से 121 यूनिट रक्त एकत्र कर विद्यालय ने निःस्वार्थ सेवा से ज्ञानार्जन के ऊँचे आयाम स्थापित किए।

आर्यसमाज के प्रसिद्ध आचार्य सुदर्शन देव जी ने उद्बोधन देकर उपस्थिति का आध्यात्मिक मार्ग दर्शन किया। डॉ. बेदांगदास मोहन्ती ने विज्ञान, दर्शन तथा काव्य से परिपूर्ण संभाषण से श्रोताओं को अभिभूत किया। छात्रों तथा प्रतिभा आश्रम के बच्चों द्व ारा प्रस्तुत रंगारंग कार्यक्रम ने विद्यालय में दी जा रही समेकित शिक्षा की प्रमाण दिया। 25 वर्षों से कार्यरत अध्यापकों को सम्मानित किया गया।

समारोह विद्यालय की स्थापना के समय सुनिश्चित उद्देश्यों और स्वप्नों को पूर्ण करने की स्मृतियों और भावी संकल्पों का प्रशंसनीय प्रयास था।

डी.ए.वी. सैक्टर-15 ए, चण्डीगढ़ में वेद प्रचार सप्ताह

आर्य युवा समाज डी.ए.वी. मॉडल स्कूल सैक्टर 15–ए, चण्डीगढ़ द्वारा 'वेद प्रचार सप्ताह एवं चतुर्वेदशतकम् पारायण यज्ञ' का शुभारंभ हुआ। जिसमें डॉ. श्रीमती सरोज मिगलानी, श्रीमती उषा जीवन, प्राचार्य श्रीमती अनुजा शर्मा, विद्यार्थियों के अभिभावकगण यजमान बने। यज्ञ में ऋग्वेदशतकम् से 40 मंत्रों से आहुतियाँ प्रदान की गई। धर्माचार्य ने गायत्री मंत्र का भावार्थ बतलाते हुए सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी।

श्रीमती उषा जीवन व श्री बी. सी. जोसन जी ने सुवचनों से कृतार्थ किया और आयोजकों का धन्यवाद ज्ञापन किया।

शांति पाठ व प्रसाद वितरण के साथ कार्यक्रम सुसम्पन्न हुआ।

बी.बी.के. डी.ए.वी. कॉलेज अमृतसर में अभिभावक दिवस

बी.बी.के. डी.ए.वी. कॉलेज फॉर विमेन, अमृतसर ने, 'दिल से शुक्रिया – माता–पिता का हार्दिक धन्यवाद' नामक एक सार्थक पहल के तहत अभिभावक दिवस मनाया।

छात्राओं को हस्तलिखित नोट्स के माध्यम से अनकही भावनाओं को व्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया गया और साथ ही माता–पिता और बच्चों के बीच गहरे संबंधों को बढ़ावा और भावनात्मक अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान किया गया।

प्रिंसीपल डॉ. पुष्पिंदर वालिया ने कहा कि परिवार मानव अस्तित्व का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो सच्ची खुशी का आधार और अंतिम स्रोत दोनों है। उन्होंने बात पर जोर दिया कि पेशेवर सफलता की तलाश में यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि माता–पिता की उपेक्षा न हो।

छात्राओं ने प्रिंसीपल और संकाय सदस्यों के प्रति भी आभार व्यक्त किया और उन्हें दूसरे अभिभावक के रूप में स्वीकार किया।

जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। स. प्र. समु. १

{संपादक – पूनम सूरी}

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 17 अगस्त 2025 से 23 अगस्त 2025

अविवेकी जन डूब जाते हैं

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

भि वेना अनूषत, इयक्षन्ति प्रचेतसः।
मज्जन्त्यविचेतसः।।

ऋग् ९.६४.२१

ऋषिः **काश्यपः**। देवता **पवमानः सोमः**। छन्दः **गायत्री**।

● (**वेनाः**) प्रभु–प्रेमी मेधावी जन, (**अभि अनूषत**) अभिमुख होकर (पवमान सोम प्रभु की) स्तुति करते हैं। (**प्रचेतसः**) प्रकृष्ट चित्तवाले विवेकी जन, (**इयक्षन्ति**) यज्ञ करने का संकल्प करते हैं। (**अविचेतसः**) अविवेकी जन, (**मज्जन्ति**) डूब जाते हैं।

● सोम प्रभु पवमान हैं, जग को पवित्र करने वाले हैं। जो मलिनता संसार में कई कारणों से उत्पन्न होती है उसे विविध साधनों से पवित्र करनेवाले सोम प्रभु यदि न होते तो मलिनता इतनी बढ़ जाती कि प्राणियों का जीवित रहना कठिन हो जाता। वे मानव के हृदय को भी पवित्र करनेवाले हैं, परन्तु उन्हीं के हृदय को पवित्र कर सकते हैं जो अपना हृदय पवित्र होने के लिए उन्हें देते हैं। प्रभु–प्रेमी मेधावी जन सोम प्रभु के अभिमुख हो उनके प्रति प्रणत होते हैं, उनकी स्तुति करते हैं, उनकी पावनता का गुणगान करते हैं, उन्हें आत्म–समर्पण करते हैं। परिणामतः वे 'प्रचेताः' बन जाते हैं, उनका चित्त प्रकृष्ट, पवित्र, ज्ञानमय और विवेकयुक्त हो जाता हैं। 'प्रचेताः' मनुष्य दीर्घद्रष्टा होते हैं। जिस यज्ञ को अन्य लोग निरर्थक समझते हैं, उन्हें वही प्यारा होता है। वह अपने जीवन में यज्ञ करने का संकल्प लेते हैं। वे सोम–यज्ञ करते हैं, सोम प्रभु के नाम से यज्ञ में आहुतियाँ डालते हैं, 'सोम' प्रभु का भजन–कीर्तन करते हैं और उससे प्रेरणा पाकर स्वयं भी साक्षात् 'सोम' बन जाते हैं। उनके जीवन में सोम–सदृश रसमयता, मधुरता और पावनता आ जाती है। 'सोम' के आदर्श को अपने सम्मुख रखते हुए वे अन्य यज्ञों का भी आयोजन करते हैं। 'सोम' प्रभु पावनता के यज्ञ को चला रहे हैं, वे भी समाज को पावन करते हैं। 'सोम' प्रभु सृष्टि–यज्ञ चला रहे हैं, वे भी सर्जनात्मक कार्यों को करते हैं। 'सोम' प्रभु पालन–पोषण और पूर्ति का यज्ञ कर रहे हैं, वे भी निर्बलों का पालन करते हैं, अपुष्टों को पुष्टि देते हैं, अपूर्णों के दोषों को दूर कर उनके छिद्र भरते हैं। यज्ञमयी नौका पर चढ़कर वे भव–सागर से पार हो जाते है। परन्तु जो 'अविचेताः' हैं, अविवेकी हैं, अल्पदर्शी हैं, वे न 'सोम' प्रभु का स्तवन करते हैं, न यज्ञ करते हैं। परिणामतः वे भव–सागर में डूब जाते हैं और दुर्गति पाते हैं।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

तत्त्वज्ञान

● महात्मा आनन्द स्वामी

भक्ति के स्वरूप पर विशद चर्चा के बाद स्वामी जी ने अब मूल विषय 'तत्त्वज्ञान' का उल्लेख करना आरम्भ किया। अभी तक जो भी चर्चा थी वह उन साधनों की थी जिसकी साधना करके व्यक्ति तत्त्वज्ञान का अधिकारी बनता है।

मुख्य प्रश्न है–तत्त्वज्ञान क्या है और कैसे हासिल किया जा सकता है ?

विवेक ख्याति की मंज़िल पर पहुँचकर बुद्धि के ऋतम्भरा बुद्धि हो जाने पर आत्म और अनात्म तत्त्वों की पृथक्ता का ज्ञान होता है। अब आत्म तत्त्व – ब्रह्मतत्त्व और जीव तत्त्व दो रूपों में दिखाई देने लगता है। यह स्थिति अष्टांग योग के द्वारा ही प्राप्त होती है। अब जड़–चेतन की ग्रन्थि भी नष्ट होने लगती है और साधक दुःखों से निवृत्त होने लगता है।

योग के आठ अंगों का तीव्रता और सावधानी से अनुष्ठान करना होता है। यमों और नियमों दोनों की चट्टान पर ही शेष योग–अंगों का भवन खड़ा किया जा सकता है।

कितने ही तत्त्वों का वर्णन स्वामी जी ने बार–बार किया। इसलिए कि समाधि की अवस्था में जाकर साधक को इन्हीं तत्त्वों का साक्षात्कार करना है।

स्वामी जी ने बताया कि 'तत्त्व समास', सांख्यदर्शन, तत्त्वबोध, वेद, गीता, योगवासिष्ठ भागवत्, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और सत्यार्थप्रकाश आदि में जो सृष्टि विज्ञान, तत्त्व व्याख्या, तत्त्वनिर्णय किया है उसमें कोई परस्पर विरोध नही है। अनादितत्त्व तो तीन ही हैं–ब्रह्मतत्त्व, आत्मतत्त्व और प्रकृतितत्त्व।

प्रकृति के रूप, गुण और स्वभाव की चर्चा की। सारे प्रपंच का उद्देश्य एक ही है कि मनुष्य 'भोग' तथा 'अपवर्ग' को प्राप्त कर ले। अव्यक्त के तीन ही धर्म हैं–एकत्त्व, अर्थतत्त्व और परार्थ्य।

यह कहकर स्वामी जी ने पुरुष आत्मा तीन बन्धों से कैसे छूटता है इसके उपाय बताने आरम्भ किए। **..... अब आगे**

पाँच क्लेशों का घेरा

जब आत्मा का इन जड़ तत्त्वों से सम्बन्ध हुआ तो समष्टि में जो महत् बना वही पुरुष में बुद्धि बना। तभी प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान, ये पाँच वायु कार्य करने लगे और तभी निम्न पाँच प्रकार की अविद्या ने आ घेरा– (1) अविद्या, (2) अस्मिता, (3) राग, (4) द्वेष, और (5) अभिनिवेश। मनुष्य जब अपने शरीर में आत्म–बुद्धि कर लेता है तो यह 'अविद्या' कहलाती है। अपनी बुद्धि ही को आत्मा समझ लेना 'अस्मिता' कहलाता है। मेरे पास ये–ये पदार्थ हो जाएँ – यह लोभ की वृत्ति 'राग' है। ये पदार्थ दूर हो जाएँ – इस घृणा की वृत्ति को 'द्वेष' कहते हैं। मैं सदा बना रहूँ, मृत्यु का ग्रास न बनूँ – यह वृत्ति 'अभिनिवेश' कहलाती है। इस पाँच प्रकार की अविद्या ने पुरुष को दृढ़ जाल में फँसा रखा है।

बुद्धि के आठ रूप

यह तथ्य भी हृदयंगम करने योग्य है कि जब पुरुष बुद्धि ही को आत्मा समझ लेता है, तभी यह कह सकता है–मैं दुःखी हूँ, मैं मूढ़ हूँ, मैं शान्त हूँ, सुखी हूँ। बुद्धि के आठ रूप और तीन वृत्तियाँ हैं :

धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य – ये बुद्धि के आठ रूप हैं। तीन वृत्तियाँ ये हैं–शान्त, घोर, मूढ़।

ये सारे रूप सत्त्व, रजस्, तमस् इन तीनों गुणों के अनुसार कार्य करते हैं। ये सारे रूप और वृत्तियाँ बुद्धि में विद्यमान तो रहती हैं परन्तु जब एक रूप प्रधान होता है तो विरोधी रूप तथा वृत्ति दबी रहती है। साधक ने यह प्रयत्न करना है कि अच्छे रूप उभरे रहें और बुरे

रूप दबे रहें। बुद्धि में जब सत्त्व बढ़ता है, रजस्–तमस् दब जाते हैं तो पुरुष धर्म (दान, दया, यम–नियम) के पालन में प्रवृत्त होता है। **ज्ञान** अर्थात् प्रकृति वा आत्मा का तत्त्वज्ञान लाभ करता है। **वैराग्य** अर्थात् इन्द्रियों के विषयों से निवृत्त होकर, सारी वासनाओं से पृथक् होकर वशीकरण वैराग्य में पहुँच जाता है। **ऐश्वर्य** अर्थात् तत्त्वज्ञान के मार्ग पर चलते हुए मन की प्रसन्नता, सत्य संकल्प हो जाता और अद्भुत मस्ती प्राप्त हो जाती है। ये बुद्धि के चार सात्त्विक रूप हैं। इनके विपरीत चार तामस रूप हैं, साधक को इन चारों तामस रूपों से बचकर आगे बढ़ना है।

तीन शरीर

आपको जो स्थूल शरीर दिखलाई दे रहा है, इसके अतिरिक्त इसके अन्दर दो और शरीर हैं। **स्थूल शरीर**–पुंजीकृत पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश, पाँचों भूतों से कर्मानुसार बना है और सुख–दुःख भोगने का प्रधान साधन है। यह उत्पन्न होता है, बढ़ता है, घटता है, रोगी होता है और नाश को प्राप्त होता है। इसके अन्दर पाँच कोश हैं, पाँच प्राण हैं, 11 इन्द्रियाँ हैं, आत्मा इन सबका संघचालक है। इसमें यदि सत्त्वगुण प्रधान हो तो यह सुखस्वरूप हो जाता है–अंग हल्के हो जाते हैं, इन्द्रियों को प्रसन्नता होती है, बुद्धि निर्मल होकर प्रकाशवाली हो जाती है। यदि शरीर में रजोगुण प्रधान हो तो दुःख–स्वरूप हो जाता है– उत्तेजना, चंचलता बढ़ जाती है, टिककर एक ही काम की ओर चित्त नहीं लगता। तमोगुण यदि प्रधान हो तो मोहस्वरूप हो जाता है–शरीर भारी होता है, इन्द्रियाँ शीघ्रता से काम नहीं करती, भजन और सत्संग में निद्रा आ घेरती है।

इस स्थूल शरीर में जिन पाँच कोशों का संकेत हुआ है, उसकी व्याख्या यह है – **(1) अन्नमय कोष** जो अन्न से सन्तुष्ट होता है और सारे कोषों का आधार हैं। **(2) प्राणमयकोश**– पाँच प्राण और पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं; यह कोश 'क्रिया–शक्ति' का है। **(3) मनोमयकोश**–मन तथा श्रोत्र, घ्राण, चक्षु, जिह्वा और त्वक्, इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के मिलने से बनता है। 'इच्छा–शक्ति' का यही केन्द्र है। **(4) विज्ञानमय कोश** बुद्धि और पाँच ज्ञानेन्द्रियों के मिलने से जो प्रकाश उत्पन्न होता है, उसे 'ज्ञान–शक्ति' कहते हैं। (5) इन सबसे परे जहाँ आनन्द की मात्रा बढ़ती है, वह **आनन्दमय कोश** है। तब क्रिया–शक्ति, इच्छा– शक्ति, तथा ज्ञान–शक्ति शान्त हो जाती हैं। आत्मा इन सब कोशों से पृथक् है।

सूक्ष्म शरीर

स्थूल शरीर में एक सूक्ष्म शरीर है जो जन्म–जन्मांतरों से हमारे साथ है। स्थूल शरीर तो एक ही जन्म का साथी है। यह सूक्ष्म शरीर तब से है जब से शरीर तथा आत्मा का सम्बन्ध होने लगा। यह सूक्ष्म शरीर तब तक साथ देगा जब तक मोक्ष नहीं हो जाता। योगी लोग इसी सूक्ष्म शरीर द्वारा पिछले जन्मों की बातें जान लेते हैं। यह पंच तन्मात्र से बना है; सुख–दुःख भोगने का साधन है। इसमें ये पदार्थ हैं– **पाँच ज्ञानेन्द्रिय**–त्वक्, नेत्र, कर्ण, घ्राण, रसना, **पाँच प्राण**–प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, पाँच तन्मात्र और मन तथा बुद्धि। यहाँ भी आत्मा पृथक् है।

इसी सूक्ष्म शरीर में जन्मान्तर के कर्मों की वासनाएँ रेखारूप में रहती हैं। इसी शरीर के सहारे अपने कर्मानुसार आत्मा भिन्न–भिन्न योनियों में पहुँचाया जाता है। यह अत्यन्त सूक्ष्म है, इतना सूक्ष्म कि यह उन जीवों के स्थूल शरीर में भी होता है, जिनके स्थूल शरीर सूक्ष्म–वीक्षण (खुर्दबीन) के बिना देखे नहीं जा सकते। जब किसी की मृत्यु होती है तो उसका सूक्ष्म शरीर अन्दर की सारी सूक्ष्म शक्तियों और इन्द्रियों के सूक्ष्म भोगों को एकत्र करके अपने साथ ले जाता है। हम इस जीवन में जो कुछ भी कार्य करते रहे हैं, धर्म या अधर्म, भक्ति या मुक्ति, वैराग्य या अवैराग्य, ऐश्वर्य या अनैश्वर्य, इन सारे कर्मों के अत्यन्त सूक्ष्म संस्कार इसी सूक्ष्म शरीर में होते हैं। यूँ समझ लीजिये कि यह 'स्थूल देहधारी आत्मा' का रिकॉर्ड कीपर (Record-keeper) है। जैसी फाइल या मिसल हमने यहाँ तैयार की है, उसी के अनुसार आत्मा इस सूक्ष्म शरीर के द्वारा मोक्ष में या अन्य योनियों में भेज दिया जाता है। हमारा एक–एक संकल्प, एक–एक विचार, एक–एक कर्म, एक–एक हाव–भाव, वैसा का वैसा इस सूक्ष्म शरीर के चित्त पर अंकित होता है। **स्थूल शरीर को आत्मघात अथवा अन्य साधनों से नष्ट किया जा सकता है परन्तु संसार के किसी वैज्ञानिक ने अभी तक कोई ऐसा आविष्कार नहीं किया, जिसके द्वारा इस सूक्ष्म शरीर से छुटकारा मिल सके।**

यही सूक्ष्म शरीर भिन्न–भिन्न योनियों में मानव–आत्मा को कर्मानुसार लिए फिरता है। 'अथर्ववेद' काण्ड 5 के पहले सूक्त का दूसरा मन्त्र देखिये :

ओं–आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद
ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा
यो वाचमनुदितां चिकेत।।

महर्षि दयानन्द ने इस मन्त्र की यह व्याख्या की है :

"जो मनुष्य पूर्व–जन्म में धर्माचरण करता है, उस धर्माचरण के फल से अनेक उत्तम शरीरों को धारण करता और अधर्मात्मा मनुष्य नीच शरीर को प्राप्त होता है। जो पूर्व जन्म में किये हुए पाप–पुण्य के फलों को भोग करने के स्वभाव से युक्त आत्मा है, वह पूर्व–शरीर को छोड़कर वायु के साथ रहता है, पुनः जल, ओषधि वा प्राण आदि में प्रवेश करता है, तदनन्तर गर्भाशय में स्थिर होके पुनः जन्म लेता है। जो जीव अनुदित वाणी अर्थात् जैसी ईश्वर ने वेदों में सत्य भाषण करने की आज्ञा दी है, वैसा ही यथावत् जानके बोलता है और धर्म में ही यथावत् स्थिर रहता है, वह मनुष्य योनि उत्तम शरीर धारण करके अनेक सुखों को भोगता है; और जो अधर्माचरण करता है, वह अनेक नीच शरीर अर्थात् कीट, पतङ्ग, पशु आदि के शरीर को धारण करके अनेक दुःखों को भोगता है।"

इसका साधन सूक्ष्म शरीर है। सूक्ष्म शरीर को अत्यन्त पवित्र बनाने की आवश्यकता है। इसे वासनारहित किये बिना छुटकारा नहीं। 'निरुक्त' में उल्लेख है :

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः।
नानायोनिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै।।
आहारा विविधाभुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः।
मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा।।
अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः।।

'मैंने अनेक बार जन्म–मरण को प्राप्त होकर नाना प्रकार की सहस्रों योनियों का सेवन किया। अनेक प्रकार के भोजन किये, अनेक माताओं के स्तनों का दुग्ध पिया, अनेक माता–पिता और सुहृदयों को देखा। मैंने गर्भ में नीचे मुख, ऊपर पग इत्यादि नाना प्रकार की पीड़ाओं से युक्त होके जन्म धारण किये किन्तु अब महादुःखों से तभी छूटूँगा कि जब परमेश्वर में प्रेम और उसकी आज्ञा का पालन करुँगा, नहीं तो इस जन्म–मरणरूप दुःख–सागर के पार जाना कभी नहीं हो सकता।'

परमात्मा की आवाज़ सुनो !

हमें सूक्ष्म शरीर की ओर अधिक ध्यान देना होगा। पर हम तो फटे पाजामे की अधिक चिंता करते हैं और फटे दिल तथा कलुषित सूक्ष्म शरीर के सुधार का विचार कुछ भी नहीं करते। तब छुटकारा कैसे होगा ? सावधान होकर सूक्ष्म शरीर को पवित्र बनाना अनिवार्य है।

परमात्मा तो सर्वदा मानव का पथ–प्रदर्शन करता रहता है, हम ही अज्ञानी बनकर उसका आदेश नहीं सुनते। महर्षि दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के सप्तम समुल्लास में स्पष्ट लिखा है कि परमेश्वर मनुष्य को मार्ग दिखाता रहता है। महर्षि के ये वचन ध्यान से पढ़िये :

"जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उस समय, जीव की इच्छा–ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाती है। उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शंका और लज्जा तथा अच्छे कर्मों के करने में अभय, निःशंकता और आनन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं, किन्तु परमात्मा की ओर से है।"

ये सारी क्रिया इस सूक्ष्म शरीर ही में होती है। मनुष्य यदि परमात्मा के इस आदेश को (जो उसी क्षण होता है जब कोई अच्छा या बुरा सङ्कल्प अथवा कार्य करने को तैयार होता है) सुन ले और अपनी इच्छा और सङ्कल्प छोड़कर परमात्मा की आज्ञा का पालन करे तो सूक्ष्म शरीर शुद्ध–निर्मल बनकर मनुष्य के स्थूल शरीर को भी पवित्र बना देता है। साधक को पूरे ध्यान से परमात्मा की आवाज़ सुनने का अभ्यास करना चाहिये।

क्रमशः

रक्षा बन्धन है कटता नहीं

प्यार पैसों में बिकता नहीं।
जो बिके फिर वो टिकता नहीं।
प्यार की चाबियों के बिना,
दिल का ताला है खुलता नहीं।
आँसुओं से नहाए बिना,
पाप का दाग धुलता नहीं।
गोल गाँठें हैं ये प्यार की,
रक्षा बंधन है कटता नहीं।
वार दे जान बहना पे जो,
रंग पक्का है छुटता नहीं।
सूत के तार बेतार हैं,
स्वर्ण चाँदी में तुलता नहीं।
रंग बदरंग हैं विश्व के ,
ऐसा त्योहार मिलता नहीं।
हर कलाई हृदय हो गई,
दिल सँभाले सँभलता नहीं।
जिनके बहनें हैं भाई नहीं,
बल्लियों दिल उछलता नहीं।
ट्रंप हों या हों उनके पिता,
ये तिरंगा है झुकता नहीं ।
सब मनीषी सुनें ध्यान से ,
काल का अश्व रुकता नहीं।

प्रोफेसर डॉ सारस्वत मोहन मनीषी
मो. 9810835335

गतांक से आगे...

स्वदेशी शासन व स्वराज्य का स्वरूप

● पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने राज्य के संचालन के लिए तीन सभाओं का प्रतिपादन किया है। महर्षि के शब्दों में–

"तीन प्रकार की सभा ही को राजा मानना चाहिए, एक मनुष्य को कभी नहीं। वे तीनों ये हैं–प्रथम राज्यप्रबन्ध के लिए एक 'आर्यराजसभा' कि जिससे विशेष करके सब राजकार्य ही सिद्ध किए जावें, दूसरी 'आर्य विद्यासभा' कि जिससे सब प्रकार की विद्याओं का प्रचार होता जाए, तीसरी 'आर्य धर्मसभा' कि जिससे धर्म का प्रचार और अधर्म की हानि होती रहे।"
(ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पृष्ठ 248)

इन्हीं सभाओं को महर्षि ने अन्यत्र राजार्य सभा, विद्यार्य सभा और धर्मार्य सभा नाम से लिखा है। यद्यपि इन सभाओं के अपने–अपने पृथक् कार्य हैं, और पृथक् रूप से ही उन कार्यों का सम्पादन इनके द्वारा किया जाता है, पर महर्षि ने यह भी विधान किया है कि ये तीनों सभाएँ सामान्य विषयों के लिए परस्पर मिलकर (एक अधिवेशन में सम्मिलित हो) उत्तम व्यवहारों का निर्धारण किया करें। **{परत्वेतास्तिस्रस्सभाः सामान्ये कार्ये मिलित्वैव सर्वानुत्तमान् व्यवहारान् प्रजासु प्रचारयेयुरिति, ऋ. भा. भू., पृष्ठ 247}**

इन तीन सभाओं में आर्य राजसभा या राजार्य सभा की स्थिति सर्वोच्च है। शासन का संचालन उसी के द्वारा किया जाता है। कानून बनाना व राजकीय आदेशों को जारी करना उसी का कार्य है। महर्षि के शब्दों में–

"जो नियम राजा और प्रजा के सुखकारक और धर्मयुक्त समझे, उन–उन नियमों को पूर्ण विद्वानों की राजसभा बाँधा करें।"
(सत्यार्थप्रकाश, छठा समुल्लास)

शासक वर्ग तथा जनता के लिए हितकारी एवं धर्मानुकूल नियमों (कानूनों) को बाँधना (निर्माण करना) राजसभा का प्रमुख कार्य है। राजसभा का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य 'सभाध्यक्ष राजा' का निर्वाचन करना है। महर्षि द्वारा प्रतिपादित शासन व्यवस्था में राजा वंशक्रमानुगत न होकर सभा द्वारा निर्वाचित या नियुक्त होता है। महर्षि ने सभाध्यक्ष राजा को निर्वाचित करने का कार्य जिस सभा के सुपुर्द किया है, वह राजसभा या राजार्य सभा ही है। उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है कि

"वैसे ये राजसभा के सदस्य जो सब गुणों में उत्तम हो उसी को सभापति करें और वह सभापति भी उत्तम नीति से समस्त राज्य के प्रबन्ध को चलावे।" (यजुर्वेद भाष्य 7/35)

राजसभा को जहाँ देश के लिए कानून बनाने हैं और सभापति राजा की नियुक्ति करनी है, वहाँ साथ ही शासन का भी संचालन करना है। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित राजार्य सभा जहाँ विधानमण्डल का कार्य करती है, वहाँ शासन का नियन्त्रण भी उसी के हाथों में है। वह राज्य की संसद् (पार्लियामेण्ट) है, और राजा का चुनाव भी वही करती है।

विद्यार्य सभा का कार्य विद्या का प्रचार व विस्तार करना है। महर्षि दयानन्द शिक्षा एवं विद्या को बहुत महत्त्व देते थे। उनके मन्तव्य के अनुसार विद्या का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही नहीं है। ज्ञान मनुष्यमात्र के लिए है और राजनियम द्वारा सब बालकों और बालिकाओं को अनिवार्य रूप से शिक्षणालयों में जाकर विद्याध्ययन करना चाहिए। महर्षि की सम्मति में कोई देश तभी उन्नति कर सकता है, जबकि उसके सब निवासी योग्य एवं सुशिक्षित हों अतः विद्यार्य सभा का कार्य अत्यन्त महत्त्व का है। महर्षि के शब्दों में, **"दूसरी विद्या सभा जिससे विद्या का प्रचार अनेकविध किया जावे और अविद्या का नाश होता रहे।"** (यजुर्वेद भाष्य 7.45)।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जिस धर्मार्य सभा का विधान किया है, उसका कार्य जनता को सच्चरित्र एवं कर्तव्यनिष्ठ बनाना है। राज्य की रक्षा व समृद्धि उसके नागरिकों के चरित्र पर ही निर्भर होती है। अतः यह आवश्यक है कि उनमें सद्गुणों के विकास का प्रयत्न किया जाए। महर्षि का मन्तव्य है कि जनता को सच्चरित्र बनाने का कार्य ऐसे उपदेशकों द्वारा किया जाए, जो धर्मार्य सभा के तत्त्वावधान में नियुक्त हों।'

"जो धर्मसभा के अधिकृत लोगों के अधीन में वर्तमान उपदेश देने वाले सबको सत्य–असत्य का उपदेश देकर धर्मात्मा करें और उनके प्रश्नों को सुन के समाधान करें और पृथ्वी आदिकों के समीप से क्षमा आदि गुणों का ग्रहण करके ग्रन्थों को ग्रहण करा पाखण्ड का नाश और धर्म को प्राप्त कराके सबको श्रेष्ठ करें।" (ऋग्वेद भाष्य 3.54.19)

प्रजा को धर्म मार्ग पर स्थिर रखने के प्रयोजन से राज्य द्वारा उपदेशकों की नियुक्ति के विषय को महर्षि ने एक अन्य स्थान पर भी निरूपित किया है।

"राजा और प्रजाजनों को चाहिए कि जो जितेन्द्रिय धर्मात्मा और परोपकार में प्रीति रखने वाले विद्वान् होवें उनको प्रजा में धर्मोपदेश के लिए नियुक्त करें और उपदेशकों को चाहिए कि प्रयत्न के साथ सबको अच्छी शिक्षा से एक धर्म में निरन्तर विरोध को छोड़कर सुखी करें।"
(यजुर्वेद भाष्य 12.59)

महर्षि को यह अभिप्रेत नहीं था कि धर्मार्य सभा द्वारा नियुक्त उपदेशक प्रजा को किसी मत या सम्प्रदाय का अनुयायी बनाने का यत्न करें। उनका कार्य प्रजा–जनों को 'श्रेष्ठ' बनाना था, और यह कार्य उन्हें उस धर्म का उपदेश करके करना था, जिसका किसी से भी विरोध नहीं हो सकता, जो सबको स्वीकार्य होता है। महर्षि ने पृथ्वी से क्षमा सदृश गुणों का ग्रहण करने का संकेत कर यह स्पष्ट कर दिया है, कि धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धीः, विद्या, सत्य और अक्रोध–ये दस जो धर्म के लक्षण किए गए हैं, उनका प्रचार कर प्रजाजन को 'श्रेष्ठ' बनाने का प्रयत्न करना ही धर्मार्य सभा द्वारा नियुक्त उपदेशकों का कार्य है। इस प्रसंग में हमारा ध्यान उन **'धर्ममहामात्रों'** की ओर जाता है, जिनकी नियुक्ति की व्यवस्था मौर्य सम्राट् अशोक द्वारा की गई थी। ये धर्ममहामात्र साम्राज्य में सर्वत्र इस प्रयोजन से नियुक्त किए गए थे कि जनता को धर्म के 'सार' का उपदेश दें, ऐसे धार्मिक तत्त्वों का, जिनसे मनुष्यों का वास्तविक हित होता है और जिनसे किसी का विरोध नहीं हो सकता। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जिस समय धर्मार्य सभा और उस द्वारा नियुक्त उपदेशकों की बात लिखी थी, तब अशोक के वे शिलालेख प्रकाश में नहीं आए थे जिनमें कि धर्ममहामात्रों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है। जनता को श्रेष्ठ एवं सच्चरित्र बनाने के प्रयोजन से उपदेशकों की नियुक्ति महर्षि का एक मौलिक विचार है।

जिस सभा (राजार्य सभा या राजसभा) द्वारा सभापति या सभाध्यक्ष राजा का चुनाव किया जाना है और जिन तीन सभाओं के सहयोग एवं नियन्त्रण में राजा को शासनकार्य का संचालन करना है, उनके सभासदों की नियुक्ति किस प्रकार की जाए, इस सम्बन्ध में महर्षि के मन्तव्य का कोई स्पष्ट निर्देश उनके ग्रन्थों से नहीं मिलता पर इन सभासदों के क्या गुण व योग्यताएँ हों, यह महर्षि ने अनेक स्थानों पर स्पष्ट किया है।

"मनुष्यों को योग्य है कि जो कवि, सब शास्त्र का वक्ता, कुटिलता का विनाश करने, दुष्टों में कठोर, श्रेष्ठों में कोमल सर्वथा बल को बढ़ाने वाले पुरुष हैं उसी को सभा आदि के अधिकारों में स्वीकार करें।" (ऋग्वेद भाष्य 1.5.11) **"जो सभ्य जन परमेश्वर से डर के उसकी आज्ञा के अनुसार जैसे रात्रि और दिन सम्पूर्ण संसार के नियमपूर्वक पालनकर्त्ता होते हैं। वैसे ही सभा में धर्म के विजय और अधर्म के पराजय से प्रजानों को आनन्दित करें।"**
(ऋग्वेद भाष्य 3.55.12)

महर्षि के अनुसार सभासद् ऐसे होने चाहिएँ जो कुटिलता का विनाश करने वाले हों, दुष्टों के प्रति कठोर और श्रेष्ठों के प्रति कोमल हों, शास्त्रों के ज्ञाता हों और राजशक्ति को बढ़ाने की सामर्थ्य रखते हों। ईश्वर से भय खाते हुए वे सदा अधर्म की पराजय तथा धर्म की विजय के लिए प्रयत्नशील रहने वाले हों। एक अन्य स्थान पर महर्षि ने लिखा है कि **उन्हीं लोगों को विद्वान् और धार्मिक जानना चाहिए जो राजा आदि राजपदाधिकारियों की झूठी स्तुति न करें (ऋग्वेद भाष्य 3.35.7) महर्षि चाटुकारिता या खुशामद के बहुत विरुद्ध थे और ऐसे व्यक्ति उनके मत में सभासद् होने योग्य नहीं थे जो झूठी प्रशंसा करते हों।** इस प्रकार के सुयोग्य व धर्मनिष्ठ व्यक्ति किस प्रक्रिया द्वारा सभासद् नियुक्त किए जाएँ, इस सम्बन्ध में महर्षि ने जो कोई निर्देश नहीं दिए, उसका कारण शायद यह है कि सभाओं के सभासदों की नियुक्ति के लिए कोई ऐसी प्रक्रिया नहीं हो सकती जो सब देशों और सब समयों के लिए समुचित हो। देश व काल के अनुसार उसका परिवर्तित होते रहना सर्वथा स्वाभाविक व उचित है। वर्तमान समय में विश्व के बहुसंख्यक लोकतन्त्र राज्यों में विधानमण्डल के सदस्यों की नियुक्ति के लिए वयस्क मताधिकार द्वारा चुनाव की

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

आनन्द की ओर

● प्रो. रामप्रसाद वेदालंकार

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

यजु. 36.3।। ऋ. 3.62.10।। यजु. 3.35।।

अन्वयः – ओ३म् भूः भुवः स्वः। सवितुः देवस्य तत् वरेण्यं भर्गः धीमहि। यः नः धियः प्रचोदयात्।

अन्वयार्थः – ओ३म् परमेश्वर का मुख्य नाम है जो सब का रक्षक है वह **(भूः)** सत् है, **(भुवः)** चित् है **(स्वः)** आनन्दस्वरूप है। ऐसे **(सवितुः देवस्य)** सकल जगत् के उत्पादक एवं प्रेरक सविता देव के **(तत् वरेण्यं भर्गः धीमहि)** उस शुद्धतम वरण करने योग्य, पापों को दग्ध करने वाले तेजोरूप का हम ध्यान करें या धारण करें। **(यः नः धियः प्रचोदयात्)** अब जो यह ध्यान किया हुआ या धारण किया हुआ प्रभु का तेजः स्वरूप है, वह हमारी बुद्धियों को, हमारे कर्मों को सदा सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे।

हे ओ३म् ! हे ओङ्कार ! हे प्रणव ! तू सत्, चित् और आनन्दस्वरूप है। हे प्रभुवर ! सत् और चित् तो हम भी हैं अर्थात् सत्ता तो हमारी भी है और चेतन भी हम हैं ही, परन्तु आनन्द हमारे पास नहीं है इसलिए इस एक अभाव के कारण जन्म जन्मान्तरों से, युग–युगान्तरों से, कल्प–कल्पान्तरों से आनन्द की खोज में हम निकले हुए हैं परन्तु यह आनन्द हमें मिला नहीं। हम ने सर्वत्र इसे ढूँढ मारा, पर कहीं यह हमें मिला नहीं। संसार के नानाविध रंग–रूपों में ढूँढा तो वहाँ भी हमें यह मिला नहीं। संसार के सर्वविध रसों में, स्वादों में इसे देखा तो भी यह हमें मिला नहीं। नाना प्रकार के हास्य–परिहासों में, नानाविध स्वर लहरियों में, ध्वनियों में, वाद्यों में, उपदेशों में, प्रवचनों में, व्याख्यानों में, गीतों में, संगीतों में, स्तवनों में, स्तोत्रों में इसे तलाश किया, पर यह हाथ आया नहीं। विभिन्न प्रकार की गन्धों में, सुगन्धों में इसे देखा, पर वहाँ भी यह हमें मिला नहीं। विविध स्पर्शों में, भोगविलासों में हमने इसे भलीभाँति देखा भाला, पर यह कहीं हमें मिला नहीं। थोड़ी–बहुत देर जो इन सब में हमें आनन्द प्रतीत हुआ भी तो बहुत जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि वह आनन्द नहीं था बल्कि आनन्द का आभास मात्र था।

हे नाथ ! यह आनन्द हमें ममता की साक्षात् मूर्ति अपनी माँ की झोली में नहीं मिला। उस बिचारी ने हमें अपनी झोली में प्यार से लिटाकर अपने स्नेह का सारा रूप साररूप दुग्धामृत पिलाया तो भी हमें यह नहीं मिला। भले ही इस माँ के स्नेह पूर्वक पिलाए हुए दुग्धामृत ने क्षण भर को, पल भर को, हमें तृप्त कर सुख से सुला दिया, पर जब हम फिर जागे तो फिर वही रोना, फिर वही भूख, फिर वही अतृप्ति। इस प्रकार यह भी आनन्द न था केवल आनन्द का आभास मात्र था। पिता ने गोद में लिया और प्यार से नाना प्रकार के रस पिलाए, जूस पिलाए, स्वादिष्ठ से स्वादिष्ठ पदार्थ खिलाए, अवलेह चटाए, पर फिर भी मैं तृप्त न हुआ, आनन्द विभोर नहीं हुआ, बल्कि अतृप्त का अतृप्त ही रहा, भूखा का भूखा ही रहा। क्षण भर को, पल भर को थोड़ा सा तृप्त होने पर मैं तो यही समझे बैठा था कि बस अब पिता ने तृप्त कर दिया है। आनन्दित कर दिया है, पर मुझे क्या पता था कि यह भी वह तृप्ति नहीं, वह आनन्द नहीं जिसकी कि मैं खोज में जन्म–जन्मान्तरों से भटक रहा हूँ। मैं बहुत ही शीघ्र फिर इस संसार में अतृप्त ही बैठा रह गया।

मेरी प्यारी माँ ने, मेरे प्यारे पिता ने मुझे तृप्त करने के लिए, मुझे आनन्दित करने के लिए मानो सिर धड़ की बाजी लगा दी थी। उन्होंने मुझे सुन्दर से सुन्दर खिलौने ले दिए, सुन्दर से सुन्दर वस्त्र बनवा दिए, नाना प्रकार के यान–बग्घी, साइकिल आदि–आदि ले दिए। बहुत सी चित्रों से विचित्र बनी हुई सुन्दर से सुन्दर एवम् आकर्षक बनी हुई प्यारी–प्यारी पुस्तकें ला दीं। यह सोच कर कि किसी तरह मैं खुश हो जाऊँ, तृप्त हो जाऊँ, आनन्दित हो जाऊँ। मैं भी तब समझता था कि "यह सब कुछ मिल जाने पर अब मैं सब तरह से तृप्त हो जाऊँगा, अब मेरी प्यास बुझ जायेगी, मेरी भूख मिट जायेगी, पर पल भर में मैं फिर अपने माता–पिता को प्यासा मिला, भूखा मिला, अतृप्त मिला, निराश और उदास मिला।"

मेरे माता–पिता मुझे स्थान–स्थान पर घुमाने ले गए, अर्थात् वे मुझे हरिद्वार ले गए, ऋषिकेश ले गये, शिमला ले गये, मंसूरी ले गये, चम्बा ले गये, आबू ले गये, जम्मू ले गये, कश्मीर ले गये, दिल्ली ले गये, बम्बई ले गये, कलकत्ता ले गये, देश ले गये, विदेश ले गये। तात्पर्य यह कि मुझे उन्होंने सुन्दर से सुन्दर नगर दिखाए, सुन्दर से सुन्दर प्राकृतिक दृश्य दिखाए। हरे–भरे घोर घने जंगल दिखाए, उनमें विहार करने वाले सुन्दर–सुन्दर प्राणी दिखाए। सुन्दर–सुन्दर हरे–भरे पर्वत दिखाए, संगमरमर के पहाड़ दिखाए, स्वच्छ जल के प्यारे–प्यारे स्रोत दिखाए, सरित्–सरोवर और सरिताएँ दिखायीं। मेरे माता–पिता ने यह समझा कि "मैं यह सब कुछ देखकर तृप्त हो जाऊँगा, खुश हो जाऊँगा, निहाल हो जाऊँगा, आनन्दित हो जाऊँगा।" मैंने भी बड़ा हर्ष अनुभव किया था तब, यह सोच कर कि "यह सब देखभाल कर मैं सब प्रकार से तृप्त हो जाऊँगा।" पर मेरे माता–पिता को क्या ज्ञात था और मुझे भी क्या पता था कि मैं फिर वैसे ही प्यासा का प्यासा, अतृप्त का अतृप्त रह जाऊँगा।

मेरी माता ने, मेरे पिता ने, मेरी बहिनों ने, मेरे भाइयों ने, मुझे तृप्त करने के लिए श्रेष्ठ से श्रेष्ठ विद्वानों की, ज्ञानियों की शरण में भेजा। जहाँ मैं पढ़ने–पढ़ाने, अध्ययन–अध्यापन में ऐसा तल्लीन हुआ, ऐसा मग्न हुआ कि कभी–कभी अपने भोजन आदि को भी मैं भूल गया। मैं जिस दिन इन गुरुओं की, ज्ञानियों की, विद्वानों की शरण में पहुँचा था उस दिन मैं बड़ा प्रसन्न था और मैंने तब अपना बड़ा सौभाग्य मानते हुए यह विचारा था कि अब मुझे किसी प्रकार का कष्ट क्लेश नहीं रहेगा और मैं सब प्रकार से सुखी हो जाऊँगा, शान्त और तृप्त हो जाऊँगा आदि–आदि। पर मुझे यह मालूम न था कि यहाँ पर भी एक दिन मैं अपने आपको निराश और हताश खड़ा पाऊँगा और जिसकी मैं खोज में हूँ उस अनुपम आनन्द से मैं अपने को वंचित अनुभव करुँगा।

मेरे माता–पिता ने, मेरे बन्धु–बान्धवों ने मेरा विवाह रचाया, मुझे मेरी आशाओं से भी बढ़कर सुन्दर, स्वस्थ एवं सुयोग्य जीवनसाथी, पत्नी वा पति प्राप्त करा दिया। पुरोहितों ने, ब्राह्मणों ने, पण्डितों ने संस्कार कर दिया। गुरुओं ने, आचार्यों ने, देवी–देवताओं और संन्यासी महानुभावों ने बड़े लाड़–प्यार से यह आशीर्वाद दिया–"**सविता वामायुः दीर्घं कृणोतु, ओ३म् सौभाग्यमस्तु। ओ३म् शुभं भवतु**" इत्यादि। मैंने सोचा, यहाँ मुझे वह सब कुछ मिल जाएगा जिसकी कि मैं खोज में निकला था।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मुझे आरम्भ आरम्भ में वहाँ ऐसा प्रतीत हुआ कि वास्तव में मैं जिस आनन्द की खोज में निकला था वह यहाँ ही है। मैंने यहाँ सुन्दर से सुन्दर, आकर्षक से आकर्षक वस्त्र पहने, नाना प्रकार के स्वादिष्ठ से स्वादिष्ठ भोजन खाए, पौष्टिक से पौष्टिक आहार लिये और भोगविलासों में ऐसा लीन हो गया जैसे कि यही जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य हो। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पहले–पहले मुझे यह भोगविलास ही सब कुछ लगा। इससे बढ़ कर मुझे कुछ और दीखा ही नहीं। मैंने समझा, बस जो कुछ है वह सब यही है। तपों का तप यही है, जपों का जप यही है, श्रवणों का श्रवण यही है, मननों का मनन यही है, स्पर्शों का स्पर्श यही है, स्वादों का स्वाद यही है, प्राप्तव्यों का प्राप्तव्य यही है, रसों का रस यही है, तृप्तियों की तृप्ति यही है, आनन्दों का आनन्द यही है इत्यादि। मुझे तब यह अपना जीवन साथी (पत्नी वा पति) प्राणों से प्यारा लगने लगा। सब जग से न्यारा लगने लगा, दुखों से दूर करने वाला और सुखों तथा आनन्दों का प्रदान करने वाला लगने लगा।

मुझे मेरे जीवन साथी ने ऐसे–ऐसे सुन्दर एवं अनुपम खिलौने दिये कि मैं गद्गद हो गया। ये खिलौने बिना चाबी के चलते थे, बोलते थे, हँसते थे, नाचते थे, गाते थे, खाते थे, पीते थे, रोते थे, नाराज़ होते थे, राज़ी होते थे, कभी झोली में घुसते थे, कभी कन्धे पर चढ़ते थे, कभी सिर पर चढ़ते थे, कभी अंगुली पकड़ कर साथ चलते थे इत्यादि। बस मुझे यही स्वर्ग भासने लगा, यही वह दिव्य लोक प्रतीत होने लगा, यही वह ब्रह्म का अनुपम धाम त्रिपाद अनुभव होने लगा, जिसको जानकर फिर मनुष्य के लिए कुछ जानने योग्य शेष नहीं रहता। जिसको पाकर फिर मनुष्य के लिए कुछ पाने योग्य शेष नहीं रहता। पर मुझे क्या मालूम था कि कुछ ही दिवसों में, कुछ ही मासों में, कुछ ही वर्षों में, जब मैं भोग विलासों में अपने जीवन की अमूल्य निधि को खो बैठूँगा और मैं ढोल की पोल बन कर रह जाऊँगा तो फिर मेरी कमर दुःखने लगेगी। मेरा सिर दर्द करने लगेगा, हाथ–पैर लड़खड़ाने लगेंगे। आँखों के सामने अन्धेरा–अन्धेरा सा छाने लगेगा, कान भी कुछ ऊँचा सुनने लगेंगे। हाथों से तब कुछ उठाना चाहते हुए भी उठाया नहीं जाएगा। पैरों से कहीं चलना चाहते हुए भी फिर चला नहीं जायेगा। कुछ पढ़ना चाहेंगे तो सिर चकराने लगेगा, जीवन में से तब उत्साह एवम् उमंग सब विदा हो जाएँगे, और मैं फिर शक्ल और अक्ल से हीन, ठूँठ–सा बन कर रह जाऊँगा। तात्पर्य यह है कि मेरे तन का तब सब प्रकार से दिवाला सा निकल जायेगा, परन्तु फिर भी मेरा मन भरेगा नहीं, प्यासे का प्यासा, भूखे का भूखा, और अतृप्त का अतृप्त सा ही बना रह जायेगा इत्यादि।

बस फिर क्या होगा मैं अवाक् सा खड़ा रह जाऊँगा और झट यह कहने लग जाऊँगा कि क्या वह स्वर्ग यही है ? क्या वह त्रिपाद यही है ? क्या वह तृप्ति यही है ? क्या वह आनन्द धाम यही है जिस ने बहुत शीघ्र ही मुझे फिर अतृप्त का अतृप्त, प्यासा का प्यासा ही नहीं प्रत्युत रोग शोक से ग्रस्त करके रख दिया। यहाँ भी मुझे वह नहीं मिला जिसकी कि मुझे खोज थी, जिसके कि

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

सत्य-असत्य की पाँच परीक्षाएँ

● भावेश मेरजा

अब जो–जो पढ़ना–पढ़ाना हो, वह–वह अच्छी प्रकार परीक्षा करके होना योग्य है। (सत्य–असत्य की) परीक्षा पाँच प्रकार से होती है –

1. जो–जो ईश्वर के गुण–कर्म–स्वभाव और वेदों के अनुकूल हो, वह–वह सत्य और उसके विरुद्ध असत्य है।
2. जो–जो सृष्टिक्रम के अनुकूल हो, वह–वह सत्य और जो–जो सृष्टिक्रम के विरुद्ध है, वह सब असत्य है। जो कोई कहे कि 'विना माता पिता–के योग से लड़का उत्पन्न हुआ', तो ऐसा कथन सृष्टिक्रम के विरुद्ध होने से असत्य है।
3. 'आप्त' अर्थात् जो धार्मिक, विद्वान्, सत्यवादी, निष्कपटियों के संग और उनके उपदेश के अनुकूल है, वह–वह ग्राह्य और जो–जो विरुद्ध है, वह–वह अग्राह्य है।
4. अपने आत्मा की पवित्रता और विद्या के अनुकूल, अर्थात् जैसे अपने को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है, वैसे सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को दुःख वा सुख दूँगा, तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा।
5. आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव।

आठ प्रमाण

1. **प्रत्यक्ष :–**

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्।। (न्याय दर्शन 1.1.4) जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण का शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के साथ अव्यवहित अर्थात् आवरणरहित सम्बन्ध होता है, और इन्द्रियों के साथ मन और मन के साथ आत्मा के संयोग से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसको 'प्रत्यक्ष' कहते हैं परन्तु जो **(अव्यपदेश्यम्)** अर्थात् संज्ञा–संज्ञी के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है वह, वह ज्ञान न हो। जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'तू जल ले आ' वह लाके, उसके पास धरके, बोला कि 'यह जल है'। परन्तु वहाँ 'ज, ल' इन दो अक्षरों की संज्ञा को, न लाने और न मंगवाने वाला देख सकता है; किन्तु जिस पदार्थ का नाम 'जल' है, वही प्रत्यक्ष होता है। और जो शब्द से ज्ञान उत्पन्न होता है, वह शब्द–प्रमाण का विषय है। **(अव्यभिचारि)** जैसे किसी ने रात्रि में खम्भे को देखके उसके पुरुष होने का निश्चय कर लिया। जब दिन में उसको देखा तो रात्रि का पुरुष–ज्ञान नष्ट होकर, स्तम्भ–ज्ञान रहा। ऐसे विनाशी ज्ञान का नाम व्यभिचारी है। **(व्यवसायात्मकम्)** किसी ने दूर से नदी की बालू देखके कहा कि 'वहाँ वस्त्र सूख रहे हैं, जल है वा और कुछ है ?', 'वह देवदत्त खड़ा है वा यज्ञदत्त ?' जब तक एक निश्चय न हो, तब तक वह प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है; किन्तु जो अव्यपदेश्य, अव्यभिचारी और निश्चयात्मक ज्ञान है, उसी को 'प्रत्यक्ष' कहते हैं।

2. **अनुमान :–**

अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतोदृष्टं च।। (न्याय दर्शन 1.1.5) जो प्रत्यक्षपूर्वक अर्थात् जिसका कोई एक देश वा सम्पूर्ण द्रव्य किसी स्थान वा काल में प्रत्यक्ष हुआ हो, उसका दूर देश से सहचारी एक देश के प्रत्यक्ष होने से अदृष्ट अवयवी का ज्ञान होने को 'अनुमान' कहते हैं। जैसे, पुत्र को देखके पिता, पर्वतादि में धूम को देखके अग्नि का, जगत् में सुख–दुःख देखके पूर्वजन्म का ज्ञान होता है। वह अनुमान तीन प्रकार का है –

1. पूर्ववत् – जहाँ कारण को देखके कार्य का ज्ञान हो, वह पूर्ववत् है। जैसे बद्दलों को देखके वर्षा का, विवाह को देखके सन्तानोत्पत्ति का, पढ़ते हुए विद्यार्थियों को देखके विद्या होने का निश्चय होता है, इत्यादि।

2. शेषवत् – अर्थात् जहाँ कार्य को देखके कारण का ज्ञान हो। जैसे, नदी के प्रवाह की बढ़ती देखके ऊपर हुई वर्षा का, पुत्र को देखके पिता का, सृष्टि को देखके अनादि–कारण का, सृष्टि में रचना–विशेष देखके कर्त्ता ईश्वर का, दुःख–सुख देखके पाप–पुण्य के आचरण का ज्ञान होता है, इसी को 'शेषवत्' कहते हैं।

3. सामान्यतोदृष्ट – जो कोई किसी का कार्य–कारण न हो परन्तु किसी प्रकार का साधर्म्य एक–दूसरे के साथ हो। जैसे कोई भी बिना चले दूसरे स्थान को नहीं जा सकता, वैसे ही दूसरों का भी स्थानान्तर में जाना बिना गमन के कभी नहीं हो सकता। अनुमान शब्द का अर्थ यही है कि अनु अर्थात् **'प्रत्यक्षस्य पश्चान्मीयते ज्ञायते येन तदनुमानम्'** = जो प्रत्यक्ष के पश्चात् उत्पन्न हो; जैसे धूम को प्रत्यक्ष देखे बिना अदृष्ट अग्नि का ज्ञान कभी नहीं हो सकता।

3. **उपमान :– प्रसिद्ध साधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम्।।** (न्याय दर्शन 1.1.6) जो प्रसिद्ध =प्रत्यक्ष साधर्म्य से साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य ज्ञान की सिद्धि करने का साधन हो, उसको 'उपमान' कहते हैं। **'उपमीयते येन तदुपमानम्'**=जैसे किसी ने किसी भृत्य से कहा कि 'तू देवदत्त के सदृश विष्णुमित्र को बुला ला', उस भृत्य ने कहा कि 'मैंने उसको कभी नहीं देखा'। उसके स्वामी ने उससे कहा कि 'जैसा यह देवदत्त है, वैसा ही विष्णुमित्र है', वा 'जैसी यह गाय है, वैसा ही गवय अर्थात् रोजा = नीलगाय होती है'। जब वह वहाँ गया और देवदत्त के सदृश देखा, निश्चय जान लिया कि 'यही विष्णुमित्र है, उसको ले–आया अथवा किसी जंगल में जिस पशु को गाय के तुल्य देखा, उसको जान लिया कि इसी का नाम गवय है।

4. **शब्द–प्रमाण :–**

आप्तोपदेशः शब्दः।। (न्याय दर्शन १.१.७) जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकार–प्रिय, सत्यवादी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय पुरुष जैसा अपने आत्मा में जानता हो और जिससे सुख पाया हो, उसी के कथन की इच्छा से प्रेरित होकर सब मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेष्टा हो,अर्थात् जितने पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थ हैं उनका ज्ञान प्राप्त होकर उपदेष्टा होता है, जो ऐसे पुरुष के उपदेश और पूर्ण आप्त परमेश्वर के उपदेश वेद हैं, उन्हीं को 'शब्द–प्रमाण' जानो।

न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवा –भावप्रामाण्यात्।। (न्याय दर्शन 2.2.1) = प्रमाण केवल चार ही नहीं हैं, क्योंकि ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव इनको भी प्रमाण माना है। अतः प्रमाण आठ हैं।

5. **ऐतिह्य :– (इतिहासो नाम वृत्तम् =)** जो **'इति ह'** अर्थात् इस प्रकार का था, उसने इस प्रकार किया अर्थात् किसी के जीवन–चरित्र का नाम 'ऐतिह्य' है।

6. **अर्थापत्ति :– 'अर्थादापद्यते सा अर्थापत्तिः'** (= 'जो एक बात किसी ने कही हो उससे विरुद्ध दूसरी बात समझी जावे' वह अर्थापत्ति कहाती है।) **केनचिदुच्यते – 'सत्सु घनेषु वृष्टिः, सति कारणे कार्यं भवतीति। किमत्र प्रसज्यते 'असत्सु घनेषु–वृष्टिः सति कारणे कार्यं न भवतीति'**=जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'बादल के होने से वर्षा और कारण के होने से कार्य उत्पन्न होता है। इससे, बिना कहे यह दूसरी बात सिद्ध होती है कि 'बिना बादल वर्षा और बिना कारण के कार्य कभी नहीं हो सकता।

7. **सम्भव :– 'सम्भवति यस्मिन् स सम्भवः'** (= जिस कार्य की सृष्टिक्रम अनुकूल और युक्ति प्रमाण से होने की सम्भावना हो, वह 'सम्भव' है, जैसे –) कोई कहे कि 'माता–पिता के सङ्ग के बिना सन्तानोत्पत्ति हुई, किसी ने मृतक जिलाए, पहाड़ उठाए, समुद्र में पत्थर तैराए, चन्द्रमा के टुकड़े किए, परमेश्वर का अवतार हुआ, मनुष्य के सींग देखे और वन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह किया', इत्यादि सब बातें असम्भव हैं क्योंकि ये सब बातें सृष्टिक्रम के विरुद्ध हैं और जो बात सृष्टिक्रम के अनुकूल हो, वही 'सम्भव' है।

8. **अभाव :– 'न भवति यस्मिन् सोऽभावः'** (= जिस कार्य में होने का भाव न हो वह 'अभाव' है।) जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'हाथी ले आ', वह वहाँ हाथी का अभाव देखकर, जहाँ हाथी था, वहाँ से ले आया।

ये आठ प्रमाण हैं। इनमें से जो शब्द में ऐतिह्य और अनुमान में अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव की गणना करें, तो चार प्रमाण रह जाते हैं।

इन पाँच प्रकार की परीक्षाओं से मनुष्य सत्य–असत्य का निश्चय कर सकता है, अन्यथा नहीं।

मेरजा द्वारा सम्पादित पुस्तक भावेश 'सत्यार्थ प्रकाशक' से साभार

ए–501, नीलकण्ठ हाईट्स सेवासी केनाल रोड सेकासी, बडोदरा गुजरात–391101
मो. 9879528247

यज्ञ : सृष्टि-विकास की प्रक्रिया

● डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार

यज्ञ 'यजुर्वेद' को सबसे प्रिय है। बहुशः तत्त्वों एवं क्रियाओं में 'यजुर्वेद' यज्ञतत्व एवं यज्ञक्रिया पर आसक्त है। इसने यज्ञतत्व एवं यज्ञक्रिया की श्रेष्ठता, प्रियता और गरीयस्त्व का बहुशः उपमाओं, प्रतीकों एवं विशेषणों के द्वारा निरूपण किया है। प्रारम्भ में ही 'यजुर्वेद' ने **'श्रेष्ठतम कर्म'** करने का आह्वान किया है। श्रेष्ठतम कर्म से 'यजुर्वेद' का क्या आशय है ? शतपथ–ब्राह्मण की दृष्टि में यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है। यज्ञ का सौन्दर्य 'यजुर्वेद' को इतना भाया कि जहाँ उसने मानवीय कर्मों की श्रेष्ठता का मानक यज्ञ को माना वहीं वह ईश्वरीय कर्म और व्यवस्था को भी **'यज्ञमय'** कहने के मोह का संवरण न कर सका। स्वयं परमात्मा तक को यजुर्वेद **'यज्ञ'** नाम से सम्बोधित कर गया है। 'यजुर्वेद' के कथन प्रत्येक स्तर पर यज्ञ से प्रभावित हैं। कितना विशाल और आकर्षक परिदृश्य है, कैसी मनोरम झाँकी है, कितना आह्लादकारी वातावरण है। 'यजुर्वेद' में इस यज्ञ के संसर्ग में आने से दिव्यता की प्राप्ति के कितने और कैसे–कैसे आश्वासन हैं। कल्पनातीत, दर्शनातीत, बुद्धयतीत। मानवीय आदर्श के चरम का मानक यज्ञ, साधना–सरणी का प्रस्तोता–यज्ञ, मोक्षकाल में भुज्यमान आनन्द यज्ञपति यज्ञपुरुष परमात्मा का यज्ञरस, सभी कुछ तो यज्ञमय है। सभी कल्पनाएँ यज्ञ के संरक्षण में पली–बढ़ी हैं और यज्ञ से परिवेष्टित हैं। कल्पना तब कल्पना के सारे आयामों से ऊपर निकल एक नए आयाम का सर्जन करती है जब सृष्टि का प्रवाह भी हमें **'सर्वहुत्'** यज्ञ की पवित्र वेदि में परम–पुरुष द्वारा दी जा रही अदिति रूपी सामग्री की ईक्षण–संकल्प पूर्ण आहुतियों से धधके जातवेदस् की सर्जनशीला ज्वालाओं से हो चला मिलता है। कर्मात्मा पुरुष के लिए यज्ञिय आदर्शों की व्याख्या के अतरिक्त यहाँ तो सृष्टि को यज्ञियस्वरूप प्रदान करनेवाले स्थलों की व्याख्या ही अभीष्ट है।

सृष्टि के निस्सरण की प्रक्रिया को लेकर वेदों में 'पुरुषसूक्त', जो 'यजुर्वेद' का इकत्तीसवाँ अध्याय है, अत्यन्त उत्साहित है। इस अध्याय का कहना है कि सहस्रशीर्षाक्षपात् पुरुष सृष्टि के आदि में **'दशाङ्गुल'** पुरुष और **'इदं सर्वम्'** को आवृत किए हुए था, **'दशाङ्गुल'** तत्त्व और **'इदं सर्वम्'** तब तक अभिव्यक्त न थे। सहस्रशीर्षाक्षपात् पुरुष ने इन्हें अभिव्यक्ति दी। जो अभिव्यक्त हुआ वह उसकी महिमा का एक–चौथाई मात्र है, तीन–चौथाई अभी अनभिव्यक्त है, जो दिव्य अमृतलोक में है। इस एकपाद् की उत्पत्ति कैसे हो गई, क्या आधार था, क्या प्रक्रिया थी ? 'एकपाद्' की अभिव्यक्ति के कथन से उपजे इन मौन प्रश्नों के स्वर जब 'पुरुष सूक्त' ने सुने तब कहना प्रारम्भ किया कि इस एकपाद् की अभिव्यक्ति का आधार यज्ञ था और इसी यज्ञ प्रक्रिया से इसे अभिव्यक्ति मिली। इस यज्ञ की संज्ञा **'सर्वहुत् यज्ञ'** थी। इस यज्ञ में कुछ भी बचाया नहीं गया था, न ही कुछ छुपाया गया था। आहुति पड़ती जाती थी, उत्तरोत्तर भिन्न–भिन्न वस्तुओं के पश्चात् इस यज्ञ का अधिपति मानों निरन्तर बोलता जाता हो–**'इदं न मम'।** भूमि बनी, वायव्य, आरण्य और ग्राम्य पशु बने, अश्व, अजा और गवादि पशु भी बने। एक ओर जहाँ यह भौतिक सृष्टि एक के बाद एक इस वेदि से प्रवाहित हो रही थी, वहीं दूसरी ओर ज्ञानात्मक सृष्टि का सर्जन भी इसी गारिमामय महनीय वेदि से हुआ। वेदों का प्रजनन इस वेदि से ही है। इस मन का वैशिष्ट्य यह भी रहा कि देवों ने इसे यज्ञ के द्वारा ही विस्तार प्रदान किया। इसमें प्रयुक्त धर्म (व्यवस्था; नियम) प्रथम धर्म बने उन्हीं धर्मों के आचरण द्वारा देवों ने अतिशय आनन्द को प्राप्त किया था।

वस्तुतः 'यजुर्वेद' के इस यज्ञ का यह दृश्य किसी भौतिक यज्ञशाला का दृश्य नहीं है, यह परमात्मा का सांकल्पिक यज्ञ है; किन्तु यह सुनिश्चित है कि कालान्तर में भौतिक यज्ञशाला में आयोजित यज्ञ का यह मानक है। 'यजुर्वेद' में 'पुरुष सूक्त' के अतिरिक्त अन्य कई स्थलों पर सृष्टि के प्रवाह का संकेत यज्ञ से है। तेईसवें अध्याय में प्रश्नोत्तर की एक रोचक शृंखला है। यह प्रश्नोत्तर यज्ञ से सम्बद्ध हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इस यज्ञ को सृष्टियज्ञ माना है। इसी शृंखला में एक मन्त्रांश इस सृष्टि–यज्ञ के ज्ञेय साधनों के प्रवचन की प्रतिज्ञा कर रहा है। इस प्रतिज्ञा का श्रवण होते ही अगले मन्त्रों में संसार के केन्द्र, पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक के रहस्य, बृहत् सूर्य के उत्पत्तिकर्त्ता और चन्द्रमा की उत्पत्ति की उपादान–सामग्री को जानने की कामना की गई है। इसी शृंखला में एक मन्त्र पृथिवी की चरम सीमा, भुवन के केन्द्र अश्व अर्थात् वृष्टि कारक सूर्य के सार और वाणी के परम व्यापक आश्रय के विषय में पूछता है। इसके उत्तर में मन्त्र कह रहा कि यह वेदि पृथिवी की परम सीमा है और यह यज्ञ भुवन का केन्द्र है। जल ही वृष्टि कारक सूर्य का रेतस् है और परमेश्वर ही वाणी का परमव्यापक आश्रय है। मन्त्र की दृष्टि में वेदि ही पृथिवी का परम अन्त है। **'शतपथ ब्राह्मण'** का भी कथन है कि जितनी वेदि है उतनी ही पृथिवी है। इस मन्त्र में पठित **'यज्ञ'** पद का अर्थ कई भाष्यकारों ने **'परमात्मा'** लिया है। अतः इन विद्वानों की दृष्टि में अर्थ होगा कि यज्ञमय–यज्ञरूप परमेश्वर ही भुवन का केन्द्र है। परमेश्वर को यज्ञरूप क्यों कहा, विशेषतया सृष्टिविषयक प्रश्नों की शृंखला में। यहाँ इस विशेषण में क्या संकेत गर्भित हैं ? क्या यही नहीं कि सृष्टि का प्रवाह यज्ञ से है और वह परमेश्वर इस प्रवाह का उत्पादक है, अतः वह यज्ञरूप है। यज्ञ से सृष्टि के कारण ही तो 'यजुर्वेद' के अनेक मन्त्रों में परमात्मा को सृष्टियज्ञ का होता कहा गया। इक्कीसवें अध्याय में एक ऐसे होता यक्ष का अनेक मन्त्रों में वर्णन है जिसने समग्र जगत्स्थ वस्तुओं की सृष्टि की है। इनसे कल्याण की कामना रखनेवाले व्यक्ति को इन्हीं मन्त्रों में यज्ञ करने का सुझाव दिया गया है। इनसे आगे के मन्त्रों में ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए फिर यज्ञ करने का सुझाव है। पं. श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर ने इस मन्त्र – शृंखला में पठित **'होता'** पद का अर्थ **'दिव्य होता'** और **'देवताओं के होता'** किया है। वैदिक संस्थान, लखनऊ से प्रकाशित यजुर्वेद भाषानुवाद में इस होता को 'सृष्टियज्ञ के होता परमेश्वर' और 'समष्टि यज्ञ के होता परमेश्वर' माना गया है। 'यजुर्वेद' के एक अन्य मन्त्र में **'आपः'** ने गर्भ धारण कर जिस यज्ञ को उत्पन्न किया, स्वामी दयानन्द सरस्वती की दृष्टि में निस्सन्देह रूप से वह यज्ञ सृष्टियज्ञ ही है। इस प्रकार इस यज्ञ को वस्तुतः सृष्टि की उत्पत्ति का प्रतीक बनाया गया है। 'यजुर्वेद' की प्रतीकात्मकता कितनी स्पष्ट है इसका आकलन उन्नीसवें अध्याय के सत्रहवें मन्त्र के आधार पर किया जा सकता है। इस मन्त्र से परिचय होने के पश्चात् इस विषय में कोई सन्देह रह ही नहीं जाता। मन्त्र कह रहा है कि – यज्ञवेदि से पृथिवी लक्षित होती है। यज्ञस्तूप से आदित्य लक्षित होता है और यज्ञाग्नि से अग्नि लक्षित होती है।

उत्तरवर्ती विद्वानों ने भौतिक यज्ञशाला में आयोज्यमान द्रव्ययज्ञ का तात्पर्य सृष्टि–विकास के नियमों की प्रस्तुति माना है। श्रौतयज्ञों की परम्परा इस क्षेत्र में अतीव महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है। पं० युधिष्ठिर मीमांसक का मत है कि सृष्टि के प्रारम्भ में सत्त्व गुण विशिष्ट योगज–शक्ति सम्पन्न परावरज्ञ ऋषि परमाणु से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त समस्त पदार्थों का हस्तामलकवत् संदर्शन कर लिया करते थे, किन्तु कालान्तर में राजसिक प्रवृत्तियों के जीवन पर प्रबल हो जाने के कारण मानसिक दिव्य शक्तियों का ह्रास हुआ। फलस्वरूप ब्रह्माण्ड और पिण्ड रचना को जानना दुरूह हो गया। ऐसे काल में तात्कालिक साक्षाकृत्धर्मा परावरज्ञों ने ब्रह्माण्ड तथा अध्यात्म का ज्ञान कराने एवम् आध्यात्मिक वेदार्थों को सुरक्षित ' रखने के उद्देश्य से यज्ञरूपी रूपकों का आश्रय लिया। जिस प्रकार भूमण्डल और नक्षत्र मण्डल के विभिन्न अवयवों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान कराने के लिए मानचित्रों का सहारा लिया जाता है, तथा प्राचीन काल की किसी परोक्ष घटना का ज्ञान कराने के लिए नाटक की कल्पना की जाती है, ठीक उसी प्रकार ब्रह्माण्ड और पिण्ड की रचना का ज्ञान कराने के लिए यज्ञों की कल्पना की गई। छोटे–बड़े अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास और चातुर्मास्य आदि यज्ञों की परिकल्पना का यही आधार है।

{पाठक इस लेख के मर्म को अधिक गंभीरता से समझने के लिए विद्वान लेख द्वारा दिए गए 24 संन्दर्भों (202 से 225 तक) को पुस्तक में देखकर लाभ ले सकते हैं– सम्पादक}

'शुक्ल यजुर्वेद में दार्शनिक तत्व' से साभार

आर्यसमाज के 150 वर्ष पूरे होने पर

आर्यसमाज और देश की अन्य संस्थाएँ

● इन्द्र विद्यावचस्पति

हम इतिहास के उस बिन्दु पर पहुँच गए हैं जहाँ सामान्य रूप से संसार की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थिति का सिंहावलोकन करके हम यह हिसाब लगा सकते हैं कि उस परिस्थिति के निर्माण करने में महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज का कितना हाथ था। साथ ही हमें यह भी जानने का यत्न करना चाहिए था कि अपने अनुभवों और बाहर के प्रभावों ने स्वयं आर्यसमाज पर क्या असर डाला ? हमें यह देख कर आश्चर्य होगा कि परोक्ष रूप में धीरे–धीरे परन्तु निश्चित क्रम के अनुसार आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं और सामान्य सदस्यों में एक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन आ रहा था जो कार्य की नई पद्ध ति की ओर ले जा रहा था। ईस्वी सन् के अनुसार वह 19वीं सदी का अन्त और बीसवीं सदी का आरम्भ था।

19वीं सदी को यूरोप के अभ्युदय की सदी कहा जाता है। उस सदी में यूरोप के देशों ने सभी दिशाओं में आगे कदम रखा। यूरोप की उस जागृति का मूल कारण वह मानसिक जागरण था जो रिनेसां (Renaissance) और रिफर्मेशन (Reformation) का परिणाम समझा जाता है। रिनेसां ने पश्चिम के निवासियों के सामने ग्रीस, यूनान और रोम के दार्शनिकों, इतिहास–लेखकों और कवियों के अनमोल ग्रन्थ खोल कर रख दिए जिन्होंने गहरे अन्धकार में पड़े हुए पश्चिमी यूरोप के निवासियों को प्रकाश की किरणें दिखाईं। उनके प्रभाव से सुधार का आन्दोलन आरम्भ हुआ जिसे रिफर्मेशन का नाम मिला। उस आन्दोलन ने रिनेसां द्वारा उत्पन्न हुई प्रगति को और तेज़ कर दिया। इन सब कारणों का सम्मिलित परिणाम यह हुआ कि उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप के देशों में एक चौमुखी क्रान्ति उत्पन्न हो गई।

ईस्वी उन्नीसवीं सदी

19वीं शताब्दी के मध्य में वह नई क्रान्ति अपने यौवन पर थी। यूरोप के इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल आदि देशों के निवासी पृथ्वी के दूर–दूर देशों में फैल गए थे और राज्य तथा साम्राज्य की स्थापना कर रहे थे। यूरोप का व्यापार संसार भर में छा गया था और विभूति बरस रही थी। प्रतीत होता था कि मुहावरे के अनुसार **यूरोप को भगवान् संसार के सब ऐश्वर्य छप्पर फाड़ कर दे रहे थे।**

प्रकृतिवाद की ओर–सांसारिक विभूति प्रायः मनुष्य की आत्मा को दबा देती है। यूरोप के साथ भी यही हुआ। बढ़ती हुई सांसारिक विभूति ने उसकी आत्मा और मन पर अद्भुत प्रभाव डाला। यूरोप की जातियाँ ईसायत को मानने वाली थीं। ईसायत का पहला मूल सिद्धान्त यह है कि ईश्वर एक है और वही सृष्टि का निर्माता है। **{इतना ही तो नहीं ईसाई यह भी तो मानते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व केवल ईश्वर की सत्ता थी और कुछ नहीं था। उसी से जीव व प्रकृति की उसी के द्वारा उत्पत्ति हुई। विज्ञान की यह घोषणा कि प्रकृति उत्पन्न भी नहीं की जा सकती और न विनष्ट की जा सकती है। यह ईसाई मत पर एक करारी चोट थी। 'जिज्ञासु'}** सांसारिक सफलता का पहला वार उसी मूल सिद्धान्त पर हुआ। हेतुवाद (Rationalism) और विज्ञान (Science) के आधार पर विचारों का जो नया भवन खड़ा हुआ उसमें ईश्वर को कोई स्थान नहीं था। ईश्वर के स्थान पर नेचर आ गई। ईश्वर द्वारा सृष्टि निर्माण का स्थान विकासवाद ने ले लिया। आगे चलकर कर्त्तव्याकर्त्तव्य की कसौटी भी बदल गई। जो उपयोगी है वही उचित माना जाने लगा। उसका नाम उपयोगितावाद रखा गया। इन प्रकृतिवाद के सभी नए सिद्धान्तों को पूरी तरह समझने या प्रमाणित करने में जो कठिनाई आती थी उसे हल करने के लिए एक अन्य सिद्धान्त बनाया गया जिसका नाम अगनोस्टिसिज्म (Agnosticism–अनीश्वरतावाद) रखा गया। इस प्रकार 19वीं शताब्दी के मध्य में यूरोप के अधिकांश देश आस्तिकता के मार्ग को छोड़कर प्रकृतिवाद की ओर झुक गए। **{बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में रूस की साम्यवादी क्रान्ति से विकासवाद और नास्तिकता को बल मिला। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के कुछ समय पश्चात् कुछ वर्षों तक नास्तिकता पर इतराना, स्वयं को प्रगतिशील मानना या कहाना एक वैचारिक फैशन बन गया। –'जिज्ञासु'}**

भारत पर पश्चिम का प्रभाव

जो समय यूरोप में प्रकृतिवाद की अधिकतम उन्नति का था उसी समय अंग्रेजों का भारत में प्रभुत्व चोटी पर पहुँच रहा है। ***'यथा राजा तथा प्रजा'*** फलतः प्रजा के अंग्रेज़ी पढ़े–लिखों पर भी हेतुवाद, विकासवाद और उपयोगितावाद आदि अनेक वादों का गहरा असर होने लगा। वे लोग अपने धर्म और अपनी परम्पराओं से विमुख होकर नास्तिकता और हेतुवाद के अनुयायी होने में गौरव अनुभव करने लगे। **उस नास्तिकता के बढ़ते हुए प्रवाह को रोकने का भारत के जिन दो महापुरुषों ने प्रयत्न किया उनके यशस्वी नाम राजा राममोहन राय और महर्षि दयानन्द हैं।** इन दोनों में से भी जहाँ राजा राममोहन राय का प्रभाव मुख्य रूप से बंगाल के अंग्रेज़ी पढ़े–लिखों में हुआ वहाँ महर्षि दयानन्द के विचारों का प्रभाव न केवल देश में अपितु विदेशों तक पहुँचा। इस विषय में अमेरिका के एक परोक्षदर्शी विद्वान् के उद्गार मनन करने योग्य हैं। ऐंडयूज जैक्सन डेविस ने अपनी पुस्तक में महर्षि दयानन्द के सम्बन्ध में लिखा था, **मुझे एक आग दिखाई पड़ती है जो कि सर्वत्र फैली हुई है अर्थात् असीम प्रेम की आग जो कि द्वेष को जलाने वाली है और प्रत्येक वस्तु को जलाकर शुद्ध कर रही है। अमेरिका के शीतल मैदानों, अफ्रीका के विस्तृत देशों, एशिया के प्राचीन पर्वतों और यूरोप के विशाल राज्यों पर मुझे इस सबको जलाने वाली और सबको इकट्ठा करने वाली आग की ज्वालाएँ दिखाई देती हैं।** इसकी चर्चा निम्नस्थ देशों से उठी है। अपने सुख और उन्नति के लिए इसे मनुष्य ने स्वयं प्रज्ज्वलित किया है। पृथिवी पर मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो आग को जलाकर उसे स्थायी बना सकता है जो कि पार्थिव सृष्टि में वागीश (नाविक) भी यही है अतएव अपने घरों में नारकीय अग्नि भड़काने में सबसे प्रथम है। हाँ, प्रोमीथस की तरह नारकीय घरों को प्रेम से पवित्र और बुद्धि से प्रकाशित करने वाली ईश्वरीय अग्नि को लाने के लिए भी यही अग्रसर है। इस अपरिमित अग्नि को देख कर, जो निस्सन्देह राज्यों, साम्राज्यों और संसार भर के प्रबन्ध और नीति के दोषों को पिघला डालेगी, मैं अत्यन्त आनन्दित होकर एक उत्साहमय जीवन व्यतीत कर रहा हूं। सब ऊँचे–ऊँचे पहाड़ जल उठेंगे, घाटियों के रमणीय नगर भुन जायेंगे, प्यारे घर और प्रेमपूर्ण हृदय साथ–साथ पिघलेंगे, पाप–पुण्य संयुक्त होकर यूँ अन्तर्हित होंगे, जैसे सूर्य की सुनहरी किरणों में ओस। असीम उन्नति की विद्युत् से मनुष्य का हृदय हिल रहा है। आज उसकी केवल चिनगारियाँ आकाश की ओर उड़ती हैं, वक्ताओं, कवियों और ग्रन्थ–निर्माताओं की शिक्षाओं में इधर–उधर ज्वालायें दीख पड़ती हैं।

आर्यसमाज रूपी अग्निः–"यह आग सनातन आर्यधर्म को स्वाभाविक पवित्र दशा में लाने के लिए एक भट्टी में थी जिसे आर्यसमाज कहते हैं। यह आग भारतवर्ष के एक परमयोगी दयानन्द सरस्वती के हृदय में प्रकाशमान हुई थी। **{ऋषि दयानन्द द्वारा प्रज्वलित आर्यसमाज रूपी अग्नि से संसार जगमगाने लगा। 'जिज्ञासु'}**

हिन्दू और मुसलमान इस प्रचण्ड अग्नि को बुझाने के लिए चारों ओर से दौड़े, परन्तु यह आग ऐसे वेग से बढ़ती गई जिसका इसके प्रकाशक दयानन्द को ध्यान भी न था और ईसाइयों ने भी, जिनके धर्म की आग और पवित्र दीपक पहले–पहले पूर्व में ही प्रकाशित हुए थे, एशिया के इस नए प्रकाश के बुझाने में हिन्दू और मुसलमानों का साथ दिया परन्तु यह ईश्वरीय आग और भी भड़क उठी और सर्वत्र फैल गई। सम्पूर्ण दोषों का संघट्ट नित्य की शुद्ध करने वाली भट्टी में जलकर भस्म हो जायेगा, यहाँ तक कि रोग के स्थान में आरोग्य, झूठे विश्वास की जगह तर्क, पाप के स्थान में पुण्य, अविद्या की जगह विज्ञान, द्वेष की जगह मित्रता, वैर की जगह समता, नरक के स्थान में स्वर्ग, दुःख के स्थान में सुख, भूत–प्रेतों के स्थान में परमेश्वर और प्रकृति का राज्य हो जायेगा। **मैं इस अग्नि को मांगलिक समझता हूँ। जब यह अग्नि सुन्दर पृथिवी को नवजीवन प्रदान करेगी तो सार्वत्रिक सुख, अभ्युदय और आनन्द का युग आरम्भ होगा।"**

दो संकट – मैंने यह लम्बा उद्ध रण इस उद्देश्य से उद्धृत किया है कि एक विदेशी विचारक की दृष्टि में महर्षि के सुधार कार्य का जो रूप था वह स्पष्ट हो जावे। जिस रूप में मि. डेविस ने गोलार्द्ध के उस छोर से महर्षि के मिशन को देखा, मेरी सम्मति में वह उसका वास्तविक रूप था। महर्षि का उद्देश्य किसी परिमित क्षेत्र में कोई सम्प्रदाय स्थापित करना नहीं था। उनका उद्देश्य सुधार की एक ऐसी अग्नि जलाना था जो समय के साथ–साथ स्वयं ही, फैलती जाये, यहाँ तक कि उसकी ज्वालाएँ विश्वभर में दिखाई दें। महर्षि की सुधार–सम्बन्धी विचार–धारा के दो पहलू थे। पहला यह कि वह दृढ़ विश्वास पर आश्रित था और दूसरा यह कि हरेक चीज में बुद्धि के प्रयोग को आवश्यक समझते थे। 19वीं शताब्दी के मध्य में भारत के मन पर दो संकट आये हुए थे। एक ओर अंधकार–पूर्ण रूढ़िवाद था तो दूसरी ओर हेतुवाद के परदे में छिपी हुई कोरी नास्तिकता थी। महर्षि ने सब विषयों को बुद्धि की कसौटी पर कसकर रुढ़िवाद के संगीन दुर्ग की दीवारें तोड़ दीं

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

और एक सर्वशक्तिमान् ईश्वर में विश्वास की रक्षापंक्ति बना कर मानसिक नगरी को उजड़ने से बचा लिया। **बुद्धिवाद और आस्तिकता दोनों को एक दूसरे के सहायक बनाकर भारत को दोनों संकटों से बचा लिया।**

सनातन धर्म का कायापलट

सनातन धर्म का वह रूप – 19वीं सदी के अन्त में हमारे देश के धार्मिक, सामाजिक और नैतिक विचारों में जो परिवर्तन हुआ, उसके तीन स्थूल रूप दिखाई देते हैं। धार्मिक क्षेत्र में चारों ओर एक नई स्फूर्ति उत्पन्न हो गई। रूढ़िवाद का सबसे दृढ़ दुर्ग सनातन धर्म को समझा जाता था। प्रारम्भ में आर्यसमाज का उसी से संघर्ष हुआ। सनातन धर्म के समर्थकों ने आर्यसमाज के आक्षेपों का उत्तर देने का प्रयत्न किया, लेखबद्ध और वाचिक शास्त्रार्थ किए और आर्यसमाज की गति को रोकने के लिए बहुत–सी मोर्चाबन्दी की। आर्यसमाज की गति तो न रुकी, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि सनातन धर्म स्वयं बदल गया। सनातन धर्म का जो रूप उस समय था जब 1867 में महर्षि ने हरिद्वार में पाखण्ड–खण्डिनी पताका फहराई थी, सन् 1900 में वह सर्वथा बदल चुका था।

{ऋषि ने पाखण्ड खण्डिनी पताका मार्च 1867 में फहराई थी। यहाँ मूल में मुद्रण दोष से सन् 1869 छप गया था। इसे शुद्ध कर दिया गया है। अब बाल विवाह, देवदासी प्रथा, जातिवाद, अस्पृश्यता, बेजोड़ विवाह, बहुविवाह, नदी नालों में स्नान से पाप क्षमा को सिद्धान्त मान कर कौन शास्त्रार्थ करता है? कौन स्त्रियों व ब्राह्मणेत्तर के वेदाध्ययन का विरोध करता है? –'जिज्ञासु'}

सनातन धर्म में जो परिवर्तन हुआ, उसका मूर्त रूप भारत धर्म महामंडल था। 1900 ई. के अगस्त मास में दिल्ली में उस मण्डल का पहला अधिवेशन हुआ। उस पर आर्यसमाज की छाप स्पष्ट दिखाई देती थी। **अनेक सम्प्रदायों में बँटे हुए सनातन धर्म को एक स्थान पर केन्द्रित करने की भावना ही नई थी** जिसे हम महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज द्वारा की हुई आलोचनाओं की प्रतिक्रिया कह सकते हैं।

{सन्त कबीर, श्री दादू तथा सिख मत मूर्ति पूजा के विरोधी तथा एकेश्वरवादी हैं। इन्हें सनातन धर्म से बाहर न करके सनातन धर्मी हिन्दू ही माना गया। आर्यसमाज का विरोध करना धर्म महामण्डल का मुख्य काम था। –'जिज्ञासु'}

मण्डल में जिन विषयों पर विचार किया गया उनमें कुछ एक निम्नलिखित थे:

स्त्री शिक्षा की दुहाई दी गई – देवनागरी वर्गों को अवश्य पढ़ना चाहिए। राजा–रईस आदि अपने कार्यालय देवनागरी अक्षरों में करें। सब लोग वैदिक संस्कार किया करें। शैव, शाक्त आदि सम्प्रदाय एक ही धर्म के अनुयायी होने के कारण परस्पर मिल कर रहें। सिक्खों को हिन्दुओं से पृथक् न समझा जाएँ। **देव–मन्दिरों और धर्म–स्थानों की आय को शिक्षा के प्रचार में व्यय किया जाए। स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार किया जाए।**

आर्यसमाज का भय भूत – अन्त में बहुत–से प्रस्तावों द्वारा यह घोषणा की गई कि अवतार को न मानने वाले आर्यसमाजी लोग वैदिक न माने जाएँ। **आर्यसमाज पर इस प्रकार की विशेष कृपा यह सिद्ध करती है कि महामण्डल के उस भारी भरकम संगठन की पृष्ठभूमि में आर्यसमाज बैठा हुआ था।** मंडल के प्रस्तावों और उनकी पुष्टि में दिए गए भाषणों का विवरण पढ़कर स्पष्ट हो जाता है कि सनातन धर्म के विशालकाय में सुधार और उन्नति के अणु प्रवेश कर थे। वह आर्यसमाज की देन थी।

आर्यसमाज छा गया – ज्यों–ज्यों समय गुजरता गया, सनातन धर्म पर आर्यसमाज का रंग गहरा होता गया। जिह्वा पर भेद रहा परन्तु मन में अभिन्नता आती गई। यह कहने में हमें ज़रा भी संकोच नहीं कि 19वीं शताब्दी के अन्त में सारे सनातन धर्म पर परोक्ष रूप से आर्यसमाज छाया हुआ था। **सनातन धर्मी विद्वान् चाहे मुँह से आर्यसमाज को बुरा कह रहे थे, उनके मन आर्यसमाज के सम्पर्क में आ चुके थे। वे ऐसे रास्ते तलाश करने में लगे हुए थे कि वे आर्यसमाज का लेबल लगाए बिना आर्यसमाज के कार्यक्रम को अपना लें।** *क्रमशः*

आर्यसमाज का इतिहास से साभार

☞ पृष्ठ 04 का शेष

स्वदेशी शासन व ...

पद्धति का आश्रय लिया जाता है। पर यह अनुभव किया जाने लगा है, कि यह पद्धति सर्वथा निर्दोष नहीं है। प्राचीन गणराज्यों में सभाओं के सदस्यों के लिए कतिपय अन्य पद्धतियों को अपनाया गया था। महर्षि ने केवल यह सिद्धान्त प्रतिपादित कर दिया है कि राज्य का शासन एक व्यक्ति के हाथों में न होकर सभा के अधीन होना चाहिए और सभा के सदस्यों का सर्वश्रेष्ठ, सुयोग्य, सदाचारी और धार्मिक होना आवश्यक है। इनकी नियुक्ति की पद्धति देश और काल की परिस्थितियों के अनुसार भिन्न–भिन्न ही होंगी।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने राज्य–संस्था के कार्यक्षेत्र के सम्बन्ध में भी कतिपय विचार प्रकट किए हैं। बाह्य और आभ्यन्तर शत्रुओं से देश की रक्षा, शान्ति और व्यवस्था स्थापित रखना, जनता का हित सुख और कल्याण सम्पादित करना, ज्ञान–विज्ञान को विकसित करना, शिक्षा का प्रसार करना, सबके प्रति यथायोग्य और एक समान बरताव करना, धर्मानुकूल न्याय करना और सार्वजनिक हित के अनेकविध कार्यों की व्यवस्था करना महर्षि के अनुसार राज्य संस्था के आवश्यक कार्य हैं। राज्य संस्था के लिए महर्षि द्वारा विहित कार्यों में कुछ का विशेष रूप से उल्लेख करना उपयोगी है। इनमें एक कार्य "मादक द्रव्य अर्थात् उन्मत्तता करने वाले द्रव्यों के सेवनकर्ताओं को दण्ड देना" है (ऋग्वेद भाष्य 3.48.4)। एक मन्त्र के भाष्य में उन्होंने "सर्वत्र नहर आदि के द्वारा जल पहुँचाना" राज्य का कार्य कहा है (यजुर्वेद भाष्य 33.44)। राजा आदि राजपुरुषों को विमान सदृश यान बनवाकर देश–देशान्तर में जाने के लिए तथा युद्ध में उनका उपयोग करने की बात भी महर्षि ने लिखी है (ऋग्वेद भाष्य 3.53.6)। पर विविध प्रकार के वाहनों का निर्माण राजा आदि द्वारा केवल अपने प्रयोग के लिए ही नहीं किया जाना है, जनता के लिए भी ये यान राज्य–संस्था द्वारा बनाए जाने चाहिएँ। महर्षि ने लिखा है कि "आप सब लोगों के सुख के लिए नदी, नद, तड़ाग और समुद्र आदि के पार उतरने के लिए नौका आदि बना के धनाड्य निरन्तर कीजिए।" (ऋग्वेद भाष्य 4.19.6) योजना– पूर्वक नगरियों का निर्माण भी महर्षि के अनुसार राज्य का कार्य है। (ऋग्वेद भाष्य 2.20.8)

आर्यसमाज का इतिहास
सत्येकेतु विद्यालंकार से साभार
अध्याय : राज्य और शासन के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द के विचार

☞ पृष्ठ 05 का शेष

आनन्द की ओर

अन्वेषण के लिए मैं युगयुगान्तरों से निकला हुआ था। बस फिर क्या था, मैं इस स्वर्गधाम रूप गृहस्थ से भी आगे बढ़ा और ऐसा आगे बढ़ा कि जा पहुँचा उस सवितादेव की शरण में, जिसने कि मुझे उत्पन्न किया था और मुझे ही नहीं सकल जगत् को भी उत्पन्न किया था। उसी से बोला, उसी के सामने अपना रोना रो बैठा, अपना करुण क्रन्दन कर बैठा कि तू ही बता, क्या इस दुर्दशा के लिए तूने मुझे उत्पन्न किया था ? क्या तेरे सारे संसार में सब का अन्त में यही हाल होता है..... ?

बस फिर क्या था उस सविता देव ने जो केवल इस विशाल जगत् में सब का उत्पन्न करने वाला ही नहीं, प्रत्युत सब का प्रेरक भी है उसने मुझे प्रेरणा दी और ऐसी प्रेरणा दी कि मैं सहज ही फिर यह बोल उठा–**'सवितुः देवस्य'** उसी सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक दिव्य गुण, कर्म, स्वभावों वाले पावन परमेश्वर के **(त वरेण्यं भर्गः धीमहि)** उस वरण करने योग्य शुद्धतम तेज को हम धारण करें **(यः नः धियः प्रचोदयात्)** जो प्रभु का हमारे द्वारा यह धारण किया हुआ तेजःस्वरूप है, वह हमारी बुद्धियों को, कर्मों को सदा सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे।"

इस प्रकार जब से हमने उस सविता देव की शरण ली और उस के वरण करने योग्य भर्गः स्वरूप का, तेजस्वरूप का ध्यान किया तभी से उसने हमारी सभी प्रकार की वासनाओं को, दुर्भावनाओं को, अतृप्त इच्छाओं को दग्ध कर दिया, भून डाला, ऐसे जैसे कि भड़भूजा भाड़ में चनों को भून डालता और फिर जैसे वे चने दग्धबीज होकर अगले चनों को नहीं उत्पन्न कर सकते, ऐसे ही हमारी वासनाएँ भी भुन कर नई, वासनाओं को उत्पन्न नहीं कर सकीं। इस प्रकार वह हमारी वासनाओं को, कामनाओं को अपने तेजः स्वरूप से भड़भूजे की तरह भूनकर समाप्त कर देता है और फिर हमें ऐसी प्रेरणाएँ देता है कि हमारी बुद्धि, हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ एवं हमारी कर्मेन्द्रियाँ सभी सन्मार्ग की ओर सहज ही अग्रसर होने लगती हैं फिर जब हमारी बागडोर ही उन प्राणों से प्यारे दुःखविनाशक, सुखस्वरूप, आनन्दस्वरूप ओ३म् नाम वाले प्रभु के हाथों में चली जाती हैं तो तब हम जो कुछ भी करते हैं फिर उसके परिणाम में हमें दुःख, दुर्भाग्य नहीं मिलते बल्कि आनन्द ही आनन्द मिलता है। आपत्तियाँ–विपत्तियाँ, आधियाँ–व्याधियाँ हमें नहीं घेरतीं वरन् सुख–सम्पत्तियाँ एवं सुख, सुविधाएँ आनन्दोत्साह हमें सदा घेरे रहते हैं।

इस प्रकार हम फिर जग में रहते हुए भी उसी के होकर रहते हैं। फिर हमें जो प्रसाद भीतर से मिलता है वह ऐसा अनोखा, ऐसा अनुपम होता है कि हम विभोर हो जाते हैं, सदा–सदा के लिए तृप्त एवम् आनन्दित हो जाते हैं।

'वैदिक सुधा' से साभार

पत्र/कविता

ईश्वर भक्त महान बनो

जगत् पिता जगदीश निरंजन, दुनियां का निर्माता है ।
जग का पालन करता है वह, जग को वही मिटाता है।।
सूरज–चाँद सितारों को वह रचता और टिकाता है।
निराकार, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक है, नज़र कहीं न आता है।। 1।।

सब जीवों को कर्मों के अनुसार उचित फल देता है।
राजाओं का राजा है वह नेताओं का नेता है।।
वेदों के अनुसार मनुष्य जो, जीवन सकल बिताते हैं।
बड़े भाग्यशाली है सज्जन, मोक्ष धाम को पाते हैं।। 2।।

यही सृष्टि का नियम निराला, जो दुनिया में आता है।
वह कर्मों का भोग–भोगकर, इस दुनियाँ से जाता है।।
न्यायकारी जगदीश दयामय, पक्ष–पात न करता है।
जो करते हैं भले काम, प्रभु, उनके, संकट हरता है।।3।।

बात भले की बता रहा हूँ, सुनो जगत् के नर–नारी।
इस दुनियाँ से चले गए, ज्ञानी–ध्यानी वेदाचारी।।
गौतम, कपिल, कणादि, पतंजलि, दयानंद जैसे ज्ञानी।
राम लखन, हनुमान, कृष्ण से, वीर बहादुर बलवानी।। 4।।

हिरण्यकुश, बाली, रावण अरु, कुम्भकर्ण अत्याचारी।
जिनका सुनकर नाम काँप उठती थी यह दुनियाँ सारी।।
अब्दाली, चंगेज़, सिकन्दर, खिलजी, आलमगीर गए।
चाऊ एन लाई, अयूब भुट्टो, सब जालिम ले पीर गए ।। 5।।

लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द मानवता के दीवाने।
वेदों का प्रचार रात–दिन, करते थे वो मस्ताने।।
तिलक, लाजपत, विपिन चन्द्र, भारत के सच्चे नेता थे।
भारत माँ के पुत्र निराले, अद्भुत वीर विजेता थे।। 6।।

मदनलाल, बिस्मिल, शेखर, उधम सिंह को तुम याद करो।
देशभक्त बलवान बनो तुम, जीवन मत बार्बाद करो।।
राजगुरु, सुखदेव, भगत सिंह, राजपाल से वीर बनो।
नेता वीर सुभाष चन्द से, देशभक्त रणधीर बनो।। 7।।

हेरा–फेरी से जोड़ा धन, यहीं पड़ा रह जाएगा।
धर्म एक है सच्चा साथी, अन्तिम साथ निभाएगा।।
मानव हो मानवता धारो, ईश्वर का गुणगान करो।
"नन्दलाल" जीवन सुधरेगा प्राप्त वेद का ध्यान करो।। 8।।

पंडित नन्दलाल 'निर्भय'
आर्य सदन बहीन, जनपद– पलवल (हरियाणा)

बुद्धिनाथ झा

बुद्धिनाथ झा 'कैरव' संताल परगना के ऐसे हिंदी सेवी रहे जिन्होंने हिंदी साहित्य को तो समृद्ध किया ही, स्वतंत्रता आंदोलन में भी सक्रिय भूमिका निभाई। उनकी मातृभाषा मैथिली थी। राष्ट्रभाषा की सेवा की और कविता का आरंभ उन्होंने ब्रजभाषा से किया। बाद में वह ब्रजभाषा छोड़ हिंदी में कविता लिखने लगे।

संताल परगना के गोडा जिले के सनौर गाँव में 18 नवंबर, 1896 में जन्मे 'कैरव' जी की प्रारंभिक शिक्षा गाँव में ही हुई। पाठशाला के गुरु पं. भैरव झा तथा भाई पं. जनार्दन मिश्र 'परमेश' कविता लिखते थे। उन्हें देखकर कविता लिखने की रूचि पैदा हो गई। वर्ष 1906 के गोरक्षा आंदोलन के समय 'कैरव' जी विधिवत् कविता लिखने लगे। अभावों के बीच पलकर भी कभी जब राष्ट्रहित चुनने का सवाल उठा तो नौकरी को त्यागने में देर नहीं की। अपने आत्म परिचय में वे लिखते हैं।

आदि का विस्मरण हूँ अंत का अज्ञान हूँ मैं
बीच में भूले हुए अस्तित्व की पहचान हूँ मैं
प्रति संध्या नियति की स्वच्छंदता में सुप्त होकर
दोपहर की डाल का फूला हुआ बंधूक हूँ मैं।

वर्ष 1920 के आसपास छोटानागपुर और संताल परगना में कांग्रेस की गतिविधियाँ शुरु हुईं। 'कैरव' जी भी आंदोलन में कूद गए। आज़ादी के गीत भी गाने लगे। देवधर, भागलपुर, पटना कैंप जेल में आवाजाही लगी रही। वर्ष 1930 से लेकर 1942 तक की इनकी रचनाओं में स्वतंत्रता के स्वर बेहद मुखर हैं। वे लिखते हैं कि उस समय जेल ही ऐसा स्थान था जहाँ बंधनों और विवशताओं के बीच भी निश्चिंत होकर लिख–पढ़ सकते थे।

वर्ष 1942 में पूरा देश धधक रहा था, संताल परगना भी इसमें पीछे नहीं था। बुद्धिनाथ कैरव जी अपनी कविताओं से क्रान्तिकारियों में जोश भर रहे थे–*जो बचे भागकर घर में निज छिपकर, घुसकर, दबकर, डरकर कहता जग उसको कायर रे! क्या जीते यों जीवित मरकर ?*

हालांकि जेल में लिखी कविताओं को जेल का कोई स्पर्श नहीं मिलता है। 'लवण लीला' नाटक बतौर उदाहरण देख सकते हैं। इसकी रचना वर्ष 1936 में की थी। तब वे हज़ारी बाग जेल में बंद थे। इसकी प्रेरणा उन्हें गांधी जी के डांडी मार्च से मिली थी। उन्होंने लिखा–

'नमक सत्याग्रह के सिलसिले में शांत और हिंसाहीन सत्याग्रहियों के ऊपर हृदयहीन पुलिस और मिलीटरी वालों का प्राणांतक प्रहार और अमानुषिक अत्याचार देख–सुनकर हृदय चुप नहीं रह सका। वह बोल उठा। उसी की आवाज़ का यह संग्रह है।'

देश की आज़ादी का उन्हें पूर्ण विश्वास था। वे मानते थे, हमारा राष्ट्र जरुर स्वतंत्र होगा। हज़ारी बाग सेंट्रल जेल में जब वे बंद थे तब उन्होंने लिखा था, स्वाधीनता दिवस के उपलक्ष्य में। कविता की इन पंक्तियों को देखिए–

आज पर्व का दिन है गावें चलो विजय का गान सखे
मंगलमय इस पुण्य घड़ी में रहे ना कोई म्लान सखे
युग–युग में पीड़ित मानवता को देकर अभिनव उन्मेश
लाया था यह दिन स्वतंत्रता का सुखमय सुंदर संदेश।

'कैरव' जी का पूरा साहित्य राष्ट्रीयता से आप्लावित है। खादी लहरी (खंड काव्य), हीरा (खंड काव्य), पश्चात्ताप (उपन्यास) आदि में राष्ट्रीयता के स्वर की पहचान बहुत आसान है। देश की आज़ादी के बाद वह भागलपुर विश्वविद्यालय के सिनेट सिंडिकेट के सदस्य रहे। वर्ष 1937 की अंतरिम सरकार में विधायक भी बने। इसके बाद वे वर्ष 1952 व 1957 में गोडा विधानसभा के सदस्य निर्वाचित हुए। डा. श्याम सुन्दर घोष ने 'कैरव कवितावली' का सम्पादन किया। वर्ष 1997 में आई इस कृति में उनकी प्रतिनिधि कविताएँ शामिल थीं, जहाँ उनकी काव्य प्रतिभा और उनके राष्ट्रप्रेम को साथ–साथ देखा जा सकता है। 30 अक्टूबर, 1970 को देवधर में जब उन्होंने आखिरी साँस ली तब भी वे एक समीक्षा ग्रंथ रच रहे थे।

स्वामी गुरुकुलानन्द 'कच्चाहारी'
पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)
'इतिहास के बिखरे पन्ने' से साभार

****

हंसराज पब्लिक स्कूल पंचकूला में युवाओं की वाणी, मूल्य और दृष्टिकोण का उत्सव

हंसराज पब्लिक स्कूल, पंचकूला में 'सुविचार – वाद–विवाद चौम्पियनशिप 2025'' का सफल समापन हुआ।

कार्यक्रम की शुरुआत औपचारिक उद्घाटन के साथ हुई। स्वागत भाषण में सुविचार की भावना को रेखांकित किया गया दृ एक ऐसा मंच जो युवाओं में नैतिक चिंतन और नागरिक नेतृत्व के गुणों को विकसित करने का माध्यम है।

मुख्य अतिथि के रूप में इस अवसर की शोभा पूर्व थलसेनाध्यक्ष जनरल वी.पी. मलिक ने बढ़ाई। उन्होंने प्रतिभागियों की आत्मविश्वास से भरी अभिव्यक्ति की सराहना की और युवाओं से आग्रह किया कि वे अपने संवाद कौशल का उपयोग राष्ट्र निर्माण और सामाजिक नेतृत्व के लिए करें।

विशिष्ट अतिथि श्री विवेक आत्रेय, पूर्व IAS अधिकारी ने आयोजन की सराहना की और कहा "ये विद्यार्थी निश्चित ही भविष्य के प्रभावशाली नेता बनेंगे।"

फाइनल राउंड में, प्रारंभिक दौर से चयनित पाँच विद्यालयों की टीमों ने समसामयिक विषयों पर प्रभावशाली तर्क प्रस्तुत किए।

निर्णयकों ने प्रतिभागियों की बौद्धिक परिपक्वता और भावनात्मक संतुलन की सराहना की।

स्कूल कोयर द्वारा प्रस्तुत स्वागत गीत ने माहौल को भावनात्मक स्पर्श दिया।

पुरस्कार वितरण समारोह में शीर्ष तीन विजेता टीमों को ट्रॉफी और प्रमाण पत्र प्रदान किए गए।

प्रधानाचार्या श्रीमती जया भारद्वाज ने सभी का हार्दिक आभार व्यक्त करते हुए कहा, शिक्षा केवल ज्ञान नहीं, बल्कि नैतिकता के साथ अभिव्यक्ति की क्षमता भी है। सुविचार इसी सोच का प्रतिबिंब है।

कार्यक्रम का समापन धन्यवाद ज्ञापन के साथ हुआ।

आर आर बावा डी.ए.वी. बटाला में नव सत्र पर यज्ञ का आयोजन

आर आर बावा डी.ए.वी. कॉलेज फॉर गर्ल्स, बटाला में नव सत्र पर यज्ञ का आयोजन किया गया। इस अवसर पर, श्री बालकृश्ण मित्तल, सचिव, डी.ए.वी. सी.एम.सी., नई दिल्ली मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। स्थानीय सलाहकार समिति से श्री राजेश कवात्रा, श्री विनोद सचदेवा, श्री के.एल. गुप्ता, श्री महेश अग्रवाल, श्री विनोद सचदेवा और श्री अश्विनी मारवाहा भी उपस्थित हुए। प्रिंसीपल डॉ. एकता खोसला ने आए हुए सभी महानुभावों का अभिनन्दन किया। वैदिक मंत्रोच्चार बीच राष्ट्र एवं विश्व के कल्याण के लिए प्रार्थना की गई।

छात्राओं को संबोधित करते हुए, प्रिंसीपल डॉ. एकता खोसला ने हवन यज्ञ के महत्व पर प्रकाश डाला और इस बात पर बल दिया कि इसके उच्च ऊर्जावान मंत्र वातावरण में सकारात्मकता, दृढ़ विश्वास और अनुपालन लाते हैं। उन्होंने कहा कि नए प्राप्त 'ए+' ग्रेड के साथ, कॉलेज छात्रों को बेहतर सुविधाएं प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है। उन्होंने बेहतर अवसरों के लिए कड़ी मेहनत करने पर ज़ोर दिया।

इस अवसर पर श्री बालकृष्ण मित्तल ने सभी को नवसत्र की शुभकामनाएं देते हुए कहा कि जीवन में हर किसी को अवसर मिलता है और सफलता उसे मिलती है जो इस अवसर का लाभ उठाता है। अंत में श्री राजेश कवात्रा ने सभी आए हुए सभी अतिथियों का धन्यवाद ज्ञापित किया। शांति पाठ से हवन यज्ञ का समापन हुआ।

डी.ए.वी. एनयूपीपीएल कानपुर में वृक्षारोपण कार्यक्रम

डी.ए.वी. एनयूपीपीएल पब्लिक स्कूल में "वन महोत्सव" के अवसर पर एक भव्य एवं प्रेरणादायी वृक्षारोपण कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस दौरान विद्यालय परिसर में लगभग 300 पौधों का रोपण किया गया, जिनमें अमरूद, अनार, आँवला, शरीफा, जामुन, शहतूत, महुआ, नीम, नींबू, करी पत्ता एवं करोंदा जैसे विविध फलदार और औषधीय पौधे शामिल थे।

कार्यक्रम का शुभारंभ विद्यालय की प्रधानाचार्या श्रीमती प्रियंका गौर के मार्गदर्शन और नेतृत्व में हुआ। इस अवसर पर एल एंड टी एनर्जी के अधिकारीगण ने भी उत्साहपूर्वक सहभागिता निभाई। शिक्षकों व विद्यार्थियों के साथ मिलकर पौधारोपण किया गया। उनके इस सहयोग से पर्यावरण संरक्षण की भावना को एक मजबूत आधार मिला।

अंत में, सभी प्रतिभागियों ने यह संकल्प लिया कि वे रोपित पौधों की नियमित देखभाल करेंगे, ताकि ये पौधे समय के साथ हरे–भरे वृक्षों में परिवर्तित होकर स्वच्छ, हरित और संतुलित पर्यावरण के निर्माण में अहम भूमिका निभा सकें।

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2025

डी.ए.वी. सैक्टर 49 में कॉन्फ्रेंशिया 25 का हुआ आयोजन

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, उप्पल साउथएंड, सेक्टर–49, गुरुग्राम में कॉन्फ्रेंशिया '25 उत्साह के साथ आयोजित किया गया।

मुख्य अतिथि के रूप में डी.ए.वी.सी.एम.सी. के उपाध्यक्ष, श्री अनिल कुमार राव जी उपस्थित रहे। विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री विनीत गोयंका जी, सचिव – सेंटर फॉर नॉलेज सॉवरेनिटी उपस्थिति हुए। विद्यालय के पूर्व छात्र श्री खुशमीत नरवाल, कॉन्फ्रेंशिया '25 के अध्यक्ष के रूप में उपस्थित हुए।

समारोह का शुभारंभ दीप प्रज्ज्वलन तथा गायत्री मंत्रोच्चारण के साथ किया गया। प्रधानाचार्या श्रीमती चारु मैनी ने 21वीं सदी के मुख्य कौशलों–तार्किकता, रचनात्मकता, सहयोग और संप्रेषण पर विशेष बल दिया।

श्री अनिल कुमार राव जी ने अपने प्रेरणादायक भाषण में कहा कि सहभागिता, परिणाम से अधिक महत्वपूर्ण है। उनके शब्दों ने प्रतिनिधियों में आत्मविश्वास भर दिया। श्री विनीत गोयंका ने क्षमा और संवाद के महत्व तभी है जब वे सामर्थ्य से उत्पन्न हों।

इस आयोजन में लगभग 800 का जनसमूह एकत्रित हुआ था जिसमें 650 से भी अधिक प्रतिभागियों ने हिस्सा लिया था।

'समापन समारोह' में मुख्य अतिथि के रूप में डी.ए.वी. सी.एम.सी. के उपाध्यक्ष और स्कूल के अध्यक्ष श्री प्रबोध महाजन जी उपस्थित रहे। उनका स्वागत हरित पौधा भेंट कर किया गया।

श्री प्रबोध महाजन जी ने विद्यार्थियों को श्रेष्ठ आचार–विचार, आहार तथा मानवीय मूल्यों को अपनाने और मोबाइल पर निर्भरता कम करने का संदेश दिया।

सेक्रेटरी जनरल सृष्टि सिंह ने आयोजन की सफलता का श्रेय टीम वर्क, समर्पण और प्रधानाचार्या जी के दूरदर्शी नेतृत्व को दिया।

डी.ए.वी. फिल्लौर में सजाया परिवारों का बगीचा

डी.ए.वी. स्कूल ने 'परिवार का बगीचा' कार्यक्रम के तहत एक अनूठी नाट्य मंचन प्रतियोगिता का आयोजन किया। इस प्रतियोगिता में, विद्यार्थियों ने भारतीय संस्कारों से ओतप्रोत पारिवारिक वातावरण को जीवंत किया। इन प्रस्तुतियों के माध्यम से, छात्रों को 'वसुधैव कुटुंबकम्' की गहन परिभाषा से अवगत कराया गया। इस पहल का मुख्य उद्देश्य बच्चों में एक ज़िम्मेदार नागरिक के रूप में वैश्विक शांति और सद्भाव में योगदान देने के लिए प्रेरित करना था।

प्रधानाचार्य श्री योगेश गंभीर ने अपने उद्बोधन में कहा कि डी.ए.वी. संस्थान सदैव छात्रों के सर्वांगीण विकास और उनमें नैतिक मूल्यों के रोपण हेतु प्रतिबद्ध है।

श्री गंभीर जी ने आधुनिक गैजेट्स के बढ़ते प्रभाव पर चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि आज के समय में छात्र परिवार के साथ पर्याप्त समय नहीं बिताते जबकि पारिवारिक सामंजस्य और सुख ही वैश्विक शांति का आधार है। उन्होंने स्पष्ट किया कि जब प्रत्येक परिवार सुखी और संगठित होगा, तभी पूरे विश्व में शांति स्थापित होगी।

दयानन्द पब्लिक स्कूल शिमला के द्वारा 'एक पौधा माँ के नाम' अभियान

दयानन्द पब्लिक स्कूल शिमला द्वारा छात्रों को 'एक पेड़ माँ के नाम' अभियान में अपनी भूमिका निभाने हेतु प्रोत्साहित किया गया। विद्यालय प्रधानाचार्या ने सभी छात्रों को अभियान की जानकारी देते हुए इसके महत्व से छात्रों को अवगत करवाया। उन्होंने कहा कि 'एक पेड़ माँ के नाम अभियान', एक सामूहिक वृक्षारोपण अभियान है जिसकी शुरुवात विश्व पर्यावरण दिवस 2024 पर बुद्ध जयंती पार्क, नई दिल्ली में की गई थी। यदि हर व्यक्ति इस अभियान में भाग ले, तो भविष्य में आने वाले पर्यायवरणीय संकटों से निजात पाई जा सकती है। दयानन्द पब्लिक स्कूल के लगभग 150 छात्रों ने विद्यालय परिसर, घर और अपने घर के आस पास क्षेत्रों में वृक्षारोपण किया गया।

इस अभियान कागज का फूल, कषायमूल, पत्थरचूर, गुलाब, तुलसी, पुदीना, नीबू, घास, मोरपंखी, एरोकेरिया, बबूल, गुलाबकावली, गेंदा फूल आदि को रोपण किया गया।

छात्रों को प्रमाण पत्र देकर सम्मानित किया गया।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**